UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178994

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H88/S53C Accession No. G.H. 2050

Author शर्मा, हरिशंकर।

Title चिड़ियाघर। 1944

This book should be returned on or before the date last marked below.

प्रकाशक-
महेन्द्र, संचालक—
साहित्य-रत्न-भण्डार,
सिविल-लाइन्स, आगरा।

तृतीय संस्करण १०००	अप्रैल सन् १९४४	मूल्य १।) रुपया

मुद्रक
गुलाबचन्द अग्रवाल,
अग्रवाल प्रेस,
रावतपाड़ा-आगरा।

'चिड़ियाघर'

की

चखचख

कभी कभी मनुष्य के ठाली दिमाग़ में कुछ खुजली सी उठा करती है। उस समय उसे प्रायः हँसी-दिल्लगी या विनोद की बातें बहुत सूझती हैं। वह मित्र-मण्डली में जा बैठता है और मनोरंजन करने लगता है। उस समय का विनोद सार्थक हो या निरर्थक, थोड़ी देर के लिए चहल-पहल और मनबहलाव का साधन अवश्य बन जाता है। इस 'चिड़ियाघर' में ऐसे ही ठाली दिमाग़ की कुछ कल्पनाएँ एकत्र करदी गई हैं। मालूम नहीं उनसे पाठकों का मनबहलाव होगा कि नहीं।

पाठक देखेंगे कि इस 'चिड़ियाघर' में कहीं तो 'काक-कवि' 'काँव-काँव' कर रहे हैं और कहीं 'कीर-कवि' राम-रटना में निमग्न हैं। कहीं 'कपोत-कवि' की 'गुटुरगूँ' हो रही है, तो कहीं 'कुक्कुट-राज' की 'कुकड़ूकूँ' सुनाई देती है। कहीं 'कुलङ्ग-कवि' पंख फड़फड़ा रहे हैं, तो कहीं 'कारण्डव-कवि' चोंच चला रहे हैं। कहीं 'लीडर-लीला' दिखाई देती है, तो कहीं "अल्हड़राम की रेंरें" कानों को फोड़े डालती है। कहीं 'पशु-पक्षियों की पार्लामेंट' में

अधिकार-अन्धड़ उठ रहा है, तो कहीं 'मुछमुण्ड-महामण्डल' में मूछों पर बुरी तरह बीत रही है। कहीं 'विनोदानन्दजी' व्याख्यान झाड़ रहे हैं, तो कहीं कम्बख़्तराय गला फाड़ रहे हैं। कहीं 'काव्य-कण्टक का कोप' है, तो कहीं 'पदवी-पतुरिया' का क्षोभ है। कहीं 'राजनीति-रमणी' मटकती है, तो कहीं 'बिरादरी-भुतनी' भटकती है। कहीं व्याहे बुढ़ऊ की बरात चलती है, तो कहीं बिना व्याही वधू जलती है। निदान इसी प्रकार के "जटिल क़ाफ़ियों" से यह पुस्तक भरी पड़ी है।

पाठक जानते हैं कि चिड़ियाघर की सैर करते समय कोई जन्तु तो दर्शक की तरफ़ गुर्राता है, कोई मुँह मटकाता है, कोई दुलत्ती झाड़ता है, कोई दुम हिलाता है, कोई भौं भौं कर पीछे पड़ता है, कोई पंख फड़फड़ा कर ऊपर उड़ता है, कोई चौंच चलाता है, और कोई गर्दन हिलाकर आगे बुलाता है, परन्तु दर्शक अपने मनोविनोद में निमग्न रहते हैं। उन्हें न किसी के भौंकने का रंज होता है न दुम हिलाने की खुशी। वह तो समझ लेते हैं कि यह मनोरंजन की जगह है। अतएव जन्तुओं की हरकतों पर ध्यान न देकर उन्हें दिल भर कर देखना चाहिए। और हो सके तो किसी से कुछ शिक्षा भी ग्रहण करनी चाहिए। हम समझते हैं, इस चिड़ियाघर के दर्शक भी उसे इसी दृष्टि से देखेंगे और किसी जन्तु की जा अथवा बेजा हरकत से बिल्कुल नाराज़ न होंगे।

'चिड़ियाघर' तैयार हो गया; उसके सारे पिंजड़े भर गये; कोई स्थान ख़ाली न रहा तो ज़रूरत हुई कि उसकी 'ओपनिंग सैरिमनी'

(उद्घाटनोत्सव) कराई जाय। किससे कराई जाय ? यह समस्या सामने आई। बड़े डरते-झिझकते, सकुचाते-लजाते काव्य-कानन-केसरी पूज्यवर श्री पं० पद्मसिंहजी शर्मा से प्रार्थना की गई—साथ ही हृदय में धधकती बनी रही कि कहीं पूज्य शर्मा जी इस 'तूफ़ाने बेतमीज़ी' को दूर ही से न दुरदुरा दें। परन्तु सहृदय साहित्याचार्यजी ने बड़ी उदारता से हमारी विनीत विनती को स्वीकार किया और अगहन सुदि, ७, सं० १९८७ बि० को अपने कर-कमलों से 'चिड़ियाघर' का उद्घाटन कर दिया। ऐसे पवित्र हाथों से दरवाज़ा खुलते ही लेखक का हृदय-सरोवर कृतज्ञता के भावों से भर गया और चिड़ियाघर का 'जन्तु-जगत्' आनन्द से चहचहाने लगा।

बस, इस सम्बन्ध में इतना ही हमें करना था सो कह चुके। अब 'चिड़ियाघर' का दरवाज़ा खुला हुआ है। दर्शक गण आवें और उसे बे रोक-टोक देखें, अगर कहीं कोई चीज़ पसन्द आ जाय तो उससे अपना मनोरंजन करलें।

—हरिशङ्कर शर्मा

चिड़ियाघर

का

उद्घाटन

मधुर हास्य रस के इने गिने दो चार लेखकों में, पण्डित हरिशंकर शर्मा कविरत्न भी एक हैं। यानी इनका नाम भी इस प्रसङ्ग में उल्लेख योग्य है।'आर्यमित्र' में इनका 'विनोद-विन्दुओं' का रस-पान करने के लिए अनेक सहृदय पाठक चातक उद्ग्रीव रहते हैं। कई सज्जन तो केवल इसीलिए 'आर्यमित्र' पढ़ते हैं, और उसमें सिर्फ वही पढ़ते हैं, बाकी उपदेशकों का प्रोग्राम, उत्सवों की तिथियाँ, दान-सूची, संस्कारों की सूचना, आर्य-सिद्धान्त की गहन मीमांसा इत्यादि सब छोड़ जाते हैं—

"सन्त हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि विकार"

यह उन पाठक-हंसों का हाल है जो आर्यसमाजी नहीं हैं; नहीं तो आर्यसामाजिक पाठक तो स्वाध्याय की तरह, वह सब कुछ पढ़ते हैं, जो 'आर्यमित्र' में छपता है। मतलब यह है कि हरिशंकरजी के'विनोद-विन्दुओं' ने 'आर्यमित्र' को साम्प्रदायिकता से बाहर साहित्यिक सीमा में सम्मिलित कर दिया है। 'विनोद-विन्दु 'आर्यमित्र' की एक विशेषता है। 'आर्यमित्र' के इतिहास में किसी दिन यह बात लिखी जायगी कि एक रूखे-सूखे 'धार्मिक' पर्चे को हरिशंकरजी के 'विनोद-विन्दुओं' ने कितना सरस बना

दिया था, जिसे पढ़ने के लिए आर्य-समाज से बाहर के लोग भी लालायित रहते थे।

'विनोद-विन्दुओं' की फुआरें मोह-निद्रा में सोते हुओं की आँखें खोल देती हैं, अँगड़ाई लेते उठते ही बनता है। पं० हरिशंकरजी 'लीडर-विज्ञान' के विशेष रूप से विशेषज्ञ हैं; 'लीडर शनास' हैं, उनके "शुतर ग़मज़े" खूब समझते हैं। इस विद्या में तो इन्हें कोई बेताल-पचीसी का सा बेताल सिद्ध हो गया है। बहुत तह की और पते की कहते हैं। 'लीडर-लीला' देख कर यह बात पाठक आसानी से समझ जायँगे। आजकल लीडर-लीला का दौरात्म्य बहुत भयानक रूप से बढ़ता जा रहा है। अनुयायियों की अपेक्षा लीडरों की संख्या कहीं बढ़ चली है। पुराने पौराणिक सिद्धान्तों के अनुसार प्रत्येक पदार्थ का एक-एक जुदा अधिष्ठातृ देव होता है, इस सिद्धान्त की सत्यता को आजकल की लीडर-लीला प्रमाणित कर रही है। किसी 'नैशनेल केलेण्डर' में गिजाइयों के छत्ते की तरह ठसाठस लीडरों को भरा देखकर भारत-विद्वेषी किसी विदेशी (अँग्रेज़) ने यह कहकर सन्तोष का सांस लिया था कि "जब यहाँ इतने लीडर हैं तो डरने की कोई बात नहीं।" लीडर लोग तो अपने काम को खूब समझते हैं, पर अनुयायी (फ़ालोअर) नावाक़िफ़ हैं कि उन्हें क्या करना चाहिये, महाकवि 'अकवर' ने चेतावनी दी थी—

"मुरशिदों में से तो हर इक जानता है अपना काम,
हाँ मुरीद अब तक नहीं वाक़िफ़ हुए हम क्या करें!"

आशा है, चिड़ियाघर में 'लीडर-लीला' पढ़ कर वह भी कुछ-कुछ अपना फ़र्ज समझ जायँगे। चिड़ियाघर की पोखर में प्रायः वही 'विनोद-विन्दु' इकट्ठे किये गये हैं, उन्हीं से यह पोखर भरी है। चिड़ियाघर का सामान चोखा है, कौतुक की सामग्री है। इस से हास्य-प्रेमी पाठकों का मनोरंजन होगा और बहुत कुछ शिक्षा मिलेगी, यदि आँखें खोल कर देखेंगे, समझ कर पढ़ेंगे। 'हुक्के की हिस्ट्री' 'पशु-पक्षियों की पार्लामेण्ट' 'प्रैक्टिकल परमार्थ' 'भारतीय मुछमुण्ड-मण्डल' 'सजीव रोगों के अजीब नुसखे' 'पदवी पतुरिया' '१४४' 'चहचहाता चिड़ियाघर' एक से बढ़कर एक चित्ताकर्षक है। हरिशंकरजी की भाषा बड़ी चुस्त और चुभती हुई होती है, अनुप्रास तो इनकी भाषा का असाधारण गुण है, सानुप्रास भाषा लिखने में तो हरिशंकरजी लासानी हैं। अनुप्रास पर तो इन्होंने कुछ जादू सा कर रक्खा है, अपने आप बँधता चला आता है, इन्हें प्रयत्न नहीं करना पड़ता। चिड़ियाघर भाषा की दृष्टि से भी और भावों के लिहाज़ से भी एक सुन्दर वस्तु हो गई है।

"भाषा भणित वस्तु भल वरनी।
कहत सुनत मंगल मुद करनी॥"

आशा है, पाठक इसे चाव से पढ़ेंगे और हरिशंकरजी से अनुरोध करेंगे कि वह एक 'पिंजरापोल' और प्रस्तुत करें, बचे-खुचे विचार-जन्तुओं को उसमें भरदें।

यह "चिड़ियाघर" साल भर से तैयार पड़ा है । प्रकाशक महोदय ने मुझसे इसकी भूमिका मांगी थी जो उसी समय भेज दी गई थी । परन्तु वह गुम हो गई, कहीं "काग़ज़ारण्य" में रल गई; बहुत ढूँढ़ा, न मिली, फिर न प्रकाशक ने और न लेखक ने उसकी चर्चा ही चलाई, याद ही न दिलाई । मैं समझा कि पुस्तक प्रकाशित होगई होगी, अब जब पिछले दिनों आगरे जाना हुआ तो मालूम हुआ कि 'चिड़ियाघर' वैसे ही बन्द पड़ा है, अभी तक दर्शकों के लिए उसका दरवाज़ा नहीं खुला । कारण पूछने पर पता चला कि भूमिका के बिना यह अनर्थ हो रहा है । सुन कर ताज्जुब हुआ, इन भले आदमियों से इतना न हुआ कि एक बार तो मुझे इसकी सूचना दे देते । इस बीच में न जाने 'चिड़ियाघर' को देखने के कितने इच्छुक सदा के लिए चल बसे होंगे । पण्डित रामजीलाल शर्मा बिचारे उन्हीं में एक थे, इस 'चिड़ियाघर' को वह अपनी आँखों न देख सके । दुर्भाग्य से कहीं ऐसी ही दुर्घटना कोई और न हो जाय, इसीलिए अब बिलम्ब करना उचित नहीं । लीजिए मैं अब इस भूमिका की रस्म अदा करके 'चिड़ियाघर' को सर्व साधारण के लिए खोलता हूँ—इसका उद्घाटन करता हूँ । जी भर कर सैर कीजिए ।

काव्य-कुटीर,
नायकनगला (बिजनौर)
अगहन सुदि ७ सं० १९८७ वि०

पद्मसिंह शर्मा

विषय-सूची

१—चिड़ियाघर की चख़चख़ ३
२—चिड़ियाघर का उद्घाटन ७
३—विषय-सूची ११
४—चहचहाता 'चिड़ियाघर' १३
५—लीडर-लीला ३०
६—घसीटानन्द की घें घें !!! ३४
७—"प्रैक्टीकल-परमार्थ" ३७
८—चूहों का डेपूटेशन ४०
९—विनोदानन्द का व्याख्यान ४२
१०—'मतवाला'—'माधुरी'—का विवाह ! ४८
११—अल्हड़राम की 'रें रें' ५५
१२—हुक़्के की हिस्ट्री ५८
१३—१४४ !!! ६०
१४—कवि-सम्मेलन की 'धड़ाकधूँ' ६२
१५—हवाई कवि-सम्मेलन ६६
१६—'चपरपंच' का चीत्कार ७०
१७—पदवी-पतुरिया ७३

१८—पशु-पक्षियों की 'पार्लामेंट' ७६
१९—भारतीय मुछमुण्ड-मण्डल ८६
२०—बिरादरी-विभ्राट् ९४
२१—पाखण्ड-प्रदर्शन १०४
२२—'करमफोड़ कम्बख़्तराय' ११४
२३—बुढ़ऊ का व्याह ११८
२४—अगुआ की आत्म-कथा १३१
२५—काव्य-कण्टक का कोप १३६
२६—सजीव रोगों के अजीब नुसखे !!! १३९
२७ - स्वर्ग की सीधी सड़क !! १४३
२८—बिरादरी पर 'बम्बार्डमेंट' १४९
२९—वैदिक बखेड़ा ! १५५
३०—सड़ियल सम्पादक १६०
३१—अड़ियल उपदेशक १६५
३२—बेढव वैद्य १७०

चिड़ियाघर

चहचहाता 'चिड़ियाघर'

स्वप्न के सुखमय संसार में, विश्व के विचित्र अद्भुतालय की—वाणिज्य-विलास, शिल्प-शाला, धर्म-धाम, समाज-सदन, राजनीति-निकेतन, अकिञ्चन-कुटीर, मज़दूर-मञ्ज़िल आदि-संस्थाएँ देखते देखते, जब जी ऊब उठा, तो अपने राम सीधे साहित्योद्यान की ओर सिधारे, और सोचने लगे कि चलो, इस शुष्कवाद के जलहीन जलाशय से निकल कर सरसता के सुन्दर सरोवर में स्नान करें; झक्कड़ता के झाड़-खण्डों को झाड़ कर सहृदयता के सुखद सुमनों की सुगन्ध सूँघें। अहा ! साहित्योद्यान का सुहावना द्वार देखने ही योग्य था। उनकी सुन्दर सुषमा का विशद वर्णन करने के लिए, कवि-कुल-कैरव-कलाधर कालि-दास की वरद वाणी चाहिये। क्या पूछते हो। साहित्योद्यान का दिव्य द्वार देख कर अपने राम चित्र लिखे-से रह गए ! आखें ठगी-सी ठिठक रहीं !! चित्त चुपके-से चिपक गया !!! पैरों ने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। इतने ही में उद्यान का अधिकारी आकर बोला—

"देखना है, तो आगे बढ़ो, नहीं तो दरवाज़ा बन्द होता है।"

मैंने कहा—"फ़ीस ?"

"फ़ीस-वीस कुछ नहीं, केवल सहृदयता का 'सार्टीफ़िकेट' साथ रखिए। अच्छा, यह तो बताइये, पहले आप इस विशाल बाग़ के किस भाग की सैर करेंगे ?"

"मैंने यह बाग़ पहले कभी नहीं देखा, इसलिए समझ में नहीं आता कि आपके इस सवाल का क्या जवाब दूँ।"

"अच्छा, बढ़िये आगे, और जो इच्छा हो सो देखिये।"

यह कह कर उस आदरणीय अधिकारी ने मुझे प्रधान द्वार द्वारा अन्दर पहुँचा दिया। अजीब नज़ारा था; अद्भुत दृश्य दिखाई देता था; गुल्म-लता, तरु-बल्लियों की असीम शोभा का ठिकाना न था। सुहावने वृक्षों और सुन्दर सुमनों की अपूर्व छटा मन को मुग्ध कर रही थी। कोयलों की कूकू और कबूतरों की गुटरगूँ ने 'समाँ' बाँध रक्खा था। जगह जगह जलाशय भरे हुए थे, झरने झर रहे थे, नाले बह रहे थे और सोते हिलोरें मार रहे थे। जिधर निगाह उठती थी, उधर ही आनन्द का आधिपत्य दिखाई देता था।

उद्यान के अन्दर घुसते ही सामने एक चहचहाता 'चिड़िया-घर' दिखाई दिया। मेरे हर्ष का ठिकाना न रहा! खुशी का खज़ाना मिल गया!! आनन्द की गङ्गा उमड़ पड़ी!! अन्धे को आँखें प्राप्त हो गईं। चलो, पहले इस चहचहाते चिड़ियाघर की ही सैर करें, इसी की वर विचित्रता से अपने अतृप्त नयनों को तृप्त करें। पाटिया (साइन बोर्ड) पर नागरी लिपि में कितने सुन्दर अक्षर लिखे हुए हैं, कैसा कौशल दिखाया गया है। साथी ने कहा—"अच्छा, आगे बढ़िये। देखिये—इस कमरे में हिन्दी का इतिहास सुरक्षित है; उसमें पुरानी लिपियों और शिला-लेखों का संग्रह किया गया है। ठीक, परन्तु इन सब बातों को सोचने-

समझने के लिये, न अपने राम के पास ओझाजी का हृदय है और न उनका मस्तिष्क ! चलो, और आगे बढ़ो।"

अच्छा ! यह दूसरा कमरा है। इसमें चन्द वरदायी से लेकर भारतेन्दु तक के समस्त साहित्य-सेवियों की स्वर्गीय आत्माएँ, अपनी अपनी कृतियों पर अटल आसन जमाये विराजमान हैं। "और आगे बढ़ो भाई, यह तो फ़ुरसत में देखने की चीज़ें हैं, एक एक का अवलोकन करने के लिये महीनों और वर्षों चाहियें।"

अच्छा, यह कमरा क्या है ? ओ हो ! इसमें सम्पादकों के पिंजड़े रक्खे हैं। वाह ! यह बहार तो देखने ही लायक़ है। किसी की दुम से दावात बँधी हुई है और कोई कान पर कलम रक्खे कूद रहा है। किसी के पैरों में पिनों की पैंजनियाँ पड़ी हैं तो कोई पैंसिल को पंजों में दबाए डोलता है, किसी की कैंची क़यामत ढा रही है तो कोई पोथियों का पुलन्दा चोंच में दबाए घूमता-फिरता है। कोई पंछी पिंजड़े में पड़ा ग़रूर से ग़ुर्रा रहा है और कोई बेचारा हाथ जोड़ कर 'हा हा' खा रहा है। क्या ही विचित्र दृश्य है ! कैसा अजीब तमाशा है !!—अच्छा, इन पिञ्जर-बद्ध-पक्षियों के कमरे के आगे क्या है ? संवाददाताओं का सन्दूक़, लेखकों का पिटारा, ग्रन्थकारों की गठरी, समालोचकों की टोकरी और व्याख्याताओं का बंडल। अच्छा, इस गद्य-गली को छोड़िये, पीछे वापिसी में देखेंगे, पहले पद्य-प्रासाद की ओर चलें —उसकी रङ्गत देखें।

ओहो !—यह है पद्य-प्रासाद ! इसमें तो भाँति-भाँति के कवि-कारण्डव और काव्य-कपोत किलोल कर रहे हैं। दूर-दूर के पद्य-प्रिय पक्षी प्रस्तुत हैं। यहाँ पखेरुओं के पंख-प्रदर्शन से ख़ूब आनन्द आता होगा, बड़ी रौनक़ रहती होगी। अजी जनाब ! रौनक़ की क्या पूछते हो, 'बहिश्त'-सी दिखाई देती है। फिर

आज तो इन कवियों का बहुत बड़ा सम्मेलन होने वाला है, खूब-'चोंच-भिड़न्त' होगी ! ज़रा देखना तो सही, कैसा मज़ा आता है । हाँ, हज़रत ! हमारे लिये तो यह बिलकुल ही एक नई बात होगी । अभी साढ़े तीन बजने में पन्द्रह मिनट बाक़ी हैं । अच्छी बात है, आइये—इस घास पर बैठ जायँ और तीन-चार घण्टे इस काव्य-कौतुक का आनन्द लूटें ।

ठीक साढ़े तीन बजे कवि-सम्मेलन शुरू हुआ । सभापति का आसन गद्य।ग्राचार्य गुरुवर गरुड़देव ने ग्रहण किया। आपने अपने भावपूर्ण भाषण के अन्त में कहा—"महाशयो, सौभाग्य से इस पद्य-प्रासाद में विविध प्रकार की बोलियाँ बोलने वाले, कृतविद्य कविवर उपस्थित हैं । सबको समान रूप से चहकने-चटखने और चहचहाने का मौक़ा दिया जायगा । बढ़िया बोलने वालों को, सोने-चाँदी की पैंजनियाँ पहनाई जायँगी और कण्ठ में कलाबतून के कण्ठे डाले जायँगे । देखना, गम्भीरता और सभ्यता हाथ से न जाने पावे ।"

इतने ही में कतिपय 'साहित्य-ठूँठों' ने अपनी विद्वत्ता का बखान करते हुए, सभापति के सारगर्भित भाषण पर बड़बड़ाहट शुरू की ! कर्ण-कटु काँव-काँव मचाई !—अपनी प्रतिभा की प्रचण्डाग्नि से काव्य-कलिका को झुलसाना चाहा । गुरु गुरुड़जी के गौरव-गुलाल पर गन्दगी के गट्ठर गिराने की चेष्टा की । गुबरीला पद्म पर प्रभुता पाने का प्रयास करने लगा, और स्यार सिंह पर दुलत्ती झाड़ने को समुत्सुक हुआ ! परन्तु सब निष्फल ! सब व्यर्थ !! उपस्थित कवि-वृन्द ने, सारे 'साहित्य-ठूँठों' का ठाठ बिगाड़ दिया; बोलती बन्द करदी ! जिससे फिर उन्हें अनर्गल आलाप करने का हौसला ही न हुआ ।

हाँ, तो सबसे पहले सभापतिजी के आदेशानुसार, प्रार्थना-पन्थी कविकंकजी ने अपनी कविता सुनानी शुरू की, आपके

खड़े होते ही पंखों को फड़ाफड़ और तुण्डों की तड़ातड़ से गगन-मण्डल गूँज उठा। आपने आँखें मींच और गला भींच कर नीचे लिखे पद्यों का पाठ प्रारम्भ किया--

अखिलेश, सर्वेश, प्रजेश पालकम्,
विश्वेश, कुल्लेश, कलेश घालकम्।
मोटर, घड़ी, इञ्जन आदि चालकम्,
विपत्ति, सङ्कट्ट विकट्ट टालकम्॥

× × × × × ×

रघुराज व्रजराज गणेश गौरी।

श्री.........

यहाँ सभापति श्रीगरुड़देवजी ने कवि को रोक कर कहा—"महाशय! आप अपनी कविताएँ सुनाते हैं या 'विष्णुसहस्रनाम' का पाठ करते हैं? काव्य-कानन में किलोल करने आये हैं या साम्प्रदायिकता की सड़क पर सपाटे भरने चले हैं?" इस पर कवि कंकजी अप्रसन्न हो गये और क्रुद्ध होकर कहने लगे—"जब तक मेरी 'प्रार्थना-पञ्चशती' समाप्त न हो जायगी तब तक आगे न बढ़ूँगा।" अस्तु, सभापतिजी के आदेशानुसार आपको बैठ जाना पड़ा।

कवि कङ्कजी के प्रस्थान करते ही रसराज-रसिक केकीकविजी की कुलबुलाहट प्रारम्भ हुई। आपकी अदा निराली थी। कभी नाक पर हाथ रखते थे, कभी कर से कमर टटोलते थे। कभी लचकते थे, कभी मचकते थे। कभी फुदकते थे, कभी कुदकते थे। कभी भृकुटी के भाले चलाते थे, कभी कटाक्ष का कारतूस छोड़ते थे। आपने अपने रङ्ग में अद्भुत आलाप करते हुए कहा—

कामिनी कबूतरी के कलित कलेवर को,
देख-देख पंछियों के पंख झड़ जाते हैं।

श्वेत बक-वृन्द की तो बात ही न पूँछो कुछ,
काले काले कौए भी पिछाड़ी पड़ जाते हैं ॥
उद्धत उलूक खोजते हैं रात-भर उसे,
गिद्ध 'धृष्टनायक' की भाँति अड़ जाते हैं।
आँख, नाक, चोंच, पङ्ख, पग प्रतियोगिता में,
कवियों के सारे उपमान सड़ जाते हैं ॥

केकी कवि की इस शृङ्गारमयी कविता से सारे कवि-समाज में हलचल मच गई, चारों ओर से 'अश्लील'! 'अश्लील'!! की आवाज़ें आने लगीं। सैकड़ों कबूतरियाँ कवियों को कोसती हुई उड़न्छू हो गईं! शोक! "देवियों का ऐसा निरादर! इतना अपमान!! बन्द करो इस कुत्सित कवि-सम्मेलन को, रोको ऐसी गन्दी गढ़न्त को, मत बकने दो इस प्रकार की बेजोड़ बातें"—यही चर्चा सब ओर से सुनाई पड़ रही थी।

बड़ी कठिनाई से प्रेसीडेन्ट मिस्टर गरुड़देव ने शान्ति स्थापित की, और बड़े बल-पूर्वक कहा—"आगे से ऐसी बेहूदी और अश्लील कविताएँ कोई न सुनावे। हाल ही में इस प्रकार के असद्व्यवहार से श्रीमती कपोत-कान्ताओं को मर्मान्तिक वेदना पहुँची है, जिससे हमें भी बड़ा दुःख है, और होना ही चाहिए। आशा है, आगे ऐसा स्वेच्छाचार न होगा।"

इसके पश्चात् धर्मध्वजी कवि बगुलाभक्तजी उठे, आपके शब्द-शब्द में साम्प्रदायिकता की सनक और कट्टरता की कड़क दिखाई देती थी। सबसे प्रथम आपने डबडबाती हुई आँखों और गिड़गिड़ाती हुई वाणी से धर्मप्राण श्रोताओं से अपील करते हुए नीचे लिखी कविता पढ़ी—

छूत-छात छोड़ना न भूल करके भी भाई,
पतितों, अछूतों को न उठने उठाने दो।

विधवा-विवाह करना है घोर पाप इसे,
कर्मवीर ! कभी कल्पना में भी न आने दो ॥
बिछुड़े हुओं को अपनाना नीचता है निरी,
ऐसी अवनति का न हुल्लड़ मचाने दो ।
धर्म को विसार कर जाति को जिलाओ मत,
कल्ल मरती हो उसे [illegible] ने दो ॥

वृद्ध वशिष्ठ बगुलाभक्तजी की कविता से सभा-मण्डप में हर्ष-विषाद का तुमुल-युद्ध छिड़ गया। सुधारक-दल का कोप-कोदण्ड तन गया किन्तु कट्टर पन्थियों ने खुशी के नगाड़े पीटने शुरू किये। सुधार और बिगाड़ के बीच खूब 'कुडुमधूं' हुई। चोंचों की चेंचें और पंखों की फड़फड़ाहट ने विश्रान्त वायु-मण्डल विलोडित कर दिया। गरुड़देव फिर उठे और अपने भाषण के आकर्षण से, येन केन प्रकारेण, बड़ी कठिनता पूर्वक शान्ति स्थापित करने में समर्थ हुए।

थोड़ी देर बाद सुधारक-दल के कवियों ने फिर राम-रौला मचाया और सभापतिजी से बड़े आग्रह पूर्वक कहा—"अबकी बार सुधारों के आधार और उन्नति के अवतार प्रसिद्ध समाज-संशोधक कविवर काककिशोरजी को कविता पढ़ने का अवसर दिया जाय।" 'अवश्य दिया जाय', 'जरूर दिया जाय', 'फ़ौरन दिया जाय', 'जी खोल कर दिया जाय', 'क्यों न दिया जाय ?' की आवेशपूर्ण ऊँची आवाज़ों ने गरुड़गोविन्दजी को मजबूर कर दिया, और उनकी आज्ञा से कविवर काककिशोरजी ने नीचे लिखी कविता सुनानी शुरू की—

छूत-छात का भूत भगा कर, सब के सँग खालेंगे हम।
उन्नति की घुड़दौड़ मची है, पीछे नहीं रहेंगे हम ॥
विधवाओं के ब्याह करेंगे, बिछुड़ों को अपनावेंगे।
जात-पाँप का तन्तु तोड़ कर, एक भाव दरसावेंगे ॥

"बैठ जाइये ! बैठ जाइये !! विश्व विनाशक विषैले वायु से इस विशुद्ध वातावरण को विषाक्त न बनाइये, बैठ जाइये ! इन तरक्की के तरानों को सुनकर कानों के परदे फटे जाते हैं, हिम्मत-दारों के हौसले घटे जाते हैं; धर्मप्राणों के पर कटे जाते हैं; बैठ जाइये !" निदान कट्टर कवियों की 'काँव-काँव' ने काक-कवि का कचूमर निकाल दिया ! कविता की कमर तोड़ दी !! फ़साहत की फरिया फाड़ दी !!! विरोध का बेडौल बबंडर देख कर बेचारे काक कवि अपना सा मुँह लेकर अवाक् बैठ गये ।

सभापति श्रीगरुड़देवजी बोले—"महाशयो, मैं पहले ही कह चुका हूँ कि आप लोग कमनीय काव्य-कानन को छोड़ कर सम्प्रदायवाद के बीहड़ वन में न भटकिये, साहित्य-संलाप त्याग कर मत-पन्थों से न अटकिये । इससे सभा में अत्यन्त असन्तोष और असीम असद्भाव उत्पन्न होता है । समाज-सुधार का स्थान यह नहीं है; उसके लिए आपको संशोधक संस्थाओं से सहायता प्राप्त करनी होगी । आशा है, आगे जो कविजन अपनी कविताएं सुनावेंगे, उनमें ऐसी वाहियात बातें न आने पावेंगी । अस्तु, अब प्रसिद्ध देशभक्त श्रीयुत कीर कविजी अपनी रचना सुनावेंगे, आप लोग ध्यानपूर्वक सुनें ।" इसके पश्चात् स्वतन्त्रता-सेवी श्रीयुत कीर कविजी ने दृग दमका तथा चोंच चमका कर नीचे लिखी रागनी रागी—

आज़ाद हो हमारा हिन्दोसतान यारो,
मिल-जुल के देशवासी, ऐसी सुविधि विचारो ।
सब जेल में सड़ो तुम, हक़ के लिए लड़ो तुम,
आपत्ति में पड़ो तुम, पर क़ौम को उबारो ।
ख़ुश होके मार खाओ, भारत के गीत गाओ;
हँस बेड़ियाँ बजाओ, दुखिया के दुःख टारो ।

"वाह सभापतिजी ! वाह !! क्या आपने हमें यहाँ प्रीज़न के पिंजड़े में अथवा कारागार के कठहरे में बन्द करने को बुलाया है ? भाड़ में जाय भारत और आग में फुँके आज़ादी ! अजी जनाब ! हम यहाँ क़ौम का उद्धार करने आए हैं या काव्य-कानन में कुदकने-फुदकने ? याद रहे, अगर किसी 'सी० आई० डी०' वाले ने सुन लिया तो बची-खुची स्वाधीनता भी नष्ट हो जायगी, लेने के देने पड़ जायँगे ! हमें इस बकवाद की ज़रा भी ज़रूरत नहीं है. अपने राम तो आशियाने में पंख पसार कर सोते और आनन्द के बीज बोते हैं।"

कीर कवि की इस कड़ी कविता को सुन कर व्योम-विहारी गरुड़देवजी को भी गुस्सा आगया। उन्होंने 'लायलटी' पर लम्बा लेक्चर भाड़ते और क्रोध में मुँह फाड़ते हुए कहा—"कविवरो ! तुम्हें इस व्यर्थवाद से क्या ? हिन्दुस्तान के आज़ाद होने न होने से तुम्हारा प्रयोजन ? तुम तो अपने उद्यान में अब भी स्वाधीन हो, और आगे भी रहोगे। अगर तुम्हारा अभिप्राय खमण्डल में खलबली मचाना है, तो याद रक्खो मैं खगराज हूँ, ऐसा कभी न होने दूंगा। क्या तुम मेरा साम्राज्य छीनना चाहते हो? धिक्कार है तुमको, और तुम्हारे विचित्र विचार को !"

सभापति श्रीगरुड़जी के इतना उच्चारते ही चारों ओर से 'छिमान् महाराज !', 'छिमान् महाराज !!' की आवाज़ आने लगी। कीर कवि ने भी हक़ीर होकर आप से क्षमा-याचना की

तदनन्तर सभापतिजी के आदेशानुसार सौंग-सनेही कविवर कुलंगजी खड़े हुए। आपने कड़ाके की आवाज़ में भड़ाके से अपना अद्भुत आलाप आरम्भ किया—

बड़ों की बात बड़ी है, घड़े में पड़ी घड़ी है।
है ऊदल कहा बिचारो, भयो जो आगे ठारो॥
न देखो रूप हमारो—

और मारदेहु मर जाहि ताहि; डर जाहि न हिम्मत हारो—
धिनाधिन ताक् थेई था।

कुलंग कवि की करारी कविता सुनते ही सभा में सन्नाटा छा गया! उपहार में पैंजनियों के पुलन्दे पड़ने लगे, 'वाह-वाह' की धूम मच गयी! 'वंसमोर' का शोर होने लगा। एक एक पंक्ति अनेक बार सुनी जाने लगी। सभापतिजी सोचने लगे, कहीं इस घोर वीर-रस की कविता से उत्तेजित होकर कोमल काय-कवि-कुमार आपस ही में सिर-फुटौअल न कर डालें। अतएव आपने कुलंग कवि को अधवर ही में बैठा दिया, जिससे सुहृदय काव्य-मर्मज्ञ उनकी क्रान्ति-कारिणी कलित कविता सुनने के लिए मुँह बाये रह गए।

इसके बाद 'पर-उपदेश-कुशल कवि' कारण्डवजी अपनी कविता-कौमुदी की अपूर्व छटा छिटकाने के लिए खड़े हुए। आप बहुत देर से व्याकुल बैल की तरह रस्से तुड़ा रहे थे। आज्ञा किसी अन्य कवि को दी जाती थी, उठ आप खड़े होते थे। ख़ैर, अबकी बार राम-राम करके आपका अवसर आ ही गया। कारण्डवजी ने करताल कर में लेकर मूंछे मरोड़ते, आंखें सिकोड़ते और तान तोड़ते हुए, साफ़े को सम्हाल-सम्हाल कर, ऊँची आवाज़ से, नीचे लिखी कविता कथ कर सुनाई—

धरम के कारणें जी, भाइयो! तन-मन-धन सब दे दो।
रच्छा करो धरम की धुन ते, धरम बड़ो है भाई।
धरम के कारन धरमदत्त ने देखो जान गँवाई॥
धरम के कारणें जी..................
धरम-धरम की धूम मचाओ, धरम-धुजा फहराओ।
धरम ओढ़लो, धरम बिछालो, धरमी सब बन जाओ॥
धरम के कारणें जी, धरम के कारणें जी—
धरम के कारणें जी; भाइयो! तन-मन-धन सब दे दो।

कवि कारण्डवजी अभी अपनी भूरि भाव-भरित कविता की दो तीन कड़ियाँ ही पढ़ने पाए थे कि लोग सरसे साफ़ा बाँध, मोटा सोटा ले, गले में गुलूबन्द लपेट पर धर्म पर बलिदान होने को आ खड़े हुए! 'जीवन-दान', 'जीवन-दान' की आवाज़ें आने लगीं, धन्य-धन्य की धूम मच गई। सभापतिजी ने भी, कारण्डव जी की चोंच चूम कर स्पष्ट शब्दों में कहा—"भाई, बस, इस आधुनिक युग में आप ही एक कामयाब कवि हैं। विराजिये, इस समय शीघ्रता है। आपकी 'पद्य-पाढ़न्त' के लिये तो पूरे पाँच घंटे दिये जाँय, तब कहीं श्रोतृ-समुदाय की संतृप्ति हो। ओहो!—आपकी कविता क्या है, 'फ़ायर ब्रिगेड' का इञ्जन या तूफ़ान ट्रेन का भोंपू है। धर्म, जिस पर जगत् स्थिर है, उसके आप जैसे परम प्रवीण प्रचारक धन्य हैं।'

कवि कारण्डवजी की 'कुकडूं'कूं'' समाप्त होते ही, घटनाघन घमण्ड घोंघा घुग्घू घासलेटानन्दजी अपनी अकड़ में घोर घोषणा करते हुए, उसी प्रकार बिना बुलाए पञ्च बन मञ्च पर आ आरूढ़ हुए जिस प्रकार 'साइमन-सप्तक' भारत के भाल पर आ धमका था! सभापति श्रीगरुड़देवजी ने गुस्से से गुर्राते हुए कहा—"अच्छा! पढ़िये, पहिले आप ही पढ़िये।" तब श्री घासलेटानन्द जी ने अगाड़ी-पिछाड़ी तोड़, और कुण्डे-कुण्डी फोड़ कर, साहित्य-क्षेत्र का सुविस्तीर्ण मैदान मार, महा मोद मनाते हुए, नीचे लिखा सरल आलाप करना शुरू किया

गोविन्द-भवन की कथा सुनो, वेश्याओं के अट्टे देखो,
लो, लोट 'लाटरी' के लुटते, बाज़ारों में सट्टे देखो।
लड़कों पर प्यार करें टीचर, वह चाकलेट चरचा सुनलो,
विधवा व्यभिचार-प्रचार करें, सो सुनो, शोकसेसिरधुनलो।

× × × × × ×

हाँ, एक एक करके तुमको, सब विस्तृत बात बताता हूँ।
परदे में पाप करें कैसे ? सो सब तुमको समझाता हूँ॥

श्रीघासलेटानन्दजी की अभी भूमिका भी समाप्त नहीं हुई थी कि काक, कंक, कारण्डव, कीर आदि कवियों ने कोपपूर्ण 'काँव-काँव' करनी शुरू कर दी। "नहीं, नहीं, हम यहाँ ऐसी विचित्र विधि सुनना नहीं चाहते। घासलेटानन्दजी, बैठ जाइये! इस सारहीन सिखावन से संसार को बख़्शिये।" इसके विपरीत दूसरे कवियों ने कहा—"कहिये, कहिये, ज़रूर कहिये। बराबर सिलसिला जारी रखिये। जाति-जागृतिका जतन जितनी जल्दी जनता को जताया जाय उतना ही अच्छा है। कहिये, कहिये, घासलेटानन्दजी कहिये"—की आवाज़ों ने कविवरजी का नाक में दम कर दिया। वे 'हाँ'-'ना' की खींचा-तानी में 'त्रिशंकु' की तरह बीच ही में लटक गए! युगल चुम्बक के मध्य में पढ़ी सुई की तरह सिटपिटाने लगे!! अड़ें या बढ़ें, हटें या डटें, चहकें या बहकें, जमें या रमें उन्हें कुछ न सूझ पड़ा। अन्त में श्रीसभापतिजी के आदेश से आप अधवर ही में बैठ गए और विरोधियों की बुद्धि पर बड़बड़ाते हुए अपनी अक़्ल की स्तुति करने लगे।

इतने कवियों की कविताएँ सुनी जाने के बाद 'टकापंथ-प्रवर्त्तक' कविवर कुक्कुटराज काव्य-कानन में कूदे। आपके 'कुकड़ूँ कूँ' करते ही जनता ने हर्ष-ध्वनि की और उत्सुकता के साथ वह उन की ओर देखने लगी। कुक्कुट कविजी 'बहर-ए-तबील' में बलन्द बाँग देते हुए बोले—

वोट दे दो रे! भाई, भिखारीमल को।
लोगों की बातों में हरगिज़ न आओ,
खद्दर न पहनो, न जेलों में जाओ;
है, चुङ्गी चुनाव चलो कल को,
वोट दे दो रे! भाई, भिखारीमल को।

बढ़-बढ़ के लाला ने दावत खिलाईं,
कोठी, हवेली, दुकानें बनाईं।
सीधे हैं, जानें न छल-बल को।
वोट दे दो रे! भाई, भिखारीमल को॥

अहा! कुक्कुट कवि की इस परोपकारवृत्ति पर सब कवियों ने साधुवाद की सिल सरकानी शुरू की, 'मरहबा' की मटकिया फोड़ दी और 'वाह-वाह' की बाँह तोड़ दी! धन्य हैं, ऐसे अशरण शरण कविराज! देखिये न, सेठजी के लिये, आपके दराज़ दिल-दालान में कैसे-कैसे प्रेम के पीपे भरे पड़े हैं। वाह! वाह!! खूब!!!

इसके अनन्तर सभापतिजी ने कविरत्न क्रौञ्चजी से कविता सुनाने को कहा। परन्तु वह बोले—"जब तक मेरे लिये आनन्द पूर्वक आसीन होने को विशुद्ध व्यास-गद्दी न दी जायगी, तब तक मैं अपनी कथा कदापि नहीं सुना सकता। हाँ, हारमोनियम और तबले की भी व्यवस्था करनी होगी।" सभापतिजी ने बात की बात में सब समुचित प्रबन्ध कर दिया। तब कविजी ने ऊँची आवाज़ से नीचे लिखी कविता गाकर सुनाई—

तब बोले साधू सुबुध, सुनो सभी धर ध्यान।
कथा आज की का विषय, है अध्यातम ज्ञान॥
संसार दुखों का सागर है, आओ, मिल-जुल सब स्वर्ग चलें।
सानन्द रहें, नन्दन-बन में, लखि-लखि हमको सब हाथ मलें॥
हम धर्म-ध्वजा की धज्जी हैं, उपकार-'कार' के 'टायर' हैं।
कविता-कुर्सी के पाये हैं, सारङ्गी के सब 'वायर' हैं॥
सब उठो, बाँध लो बस बिस्तर, उस अमरपुरी के जाने को।
तुलसी, केशव और सूर जहाँ, आवेंगे हाथ मिलाने को॥

क्रौञ्च कवि की कविता सुन कर लोग मारे क्रोध के काँपने लगे। "आया कहीं का कठमुल्ला! हमें स्वर्ग ले जाना चाहता है। अरे, पहले इस दुनिया का आया-गया तो देखलें, यहाँ तो विजय

का बैण्ड बजादें, तब कहीं स्वर्ग-नरक का नम्बर आवेगा। धिक्कार ! धिक्कार!!! ऐसी क़ातिल कविताओं की ज़रूरत नहीं है। सभापतिजी, बन्द कीजिए। इस वैराग्य के विषैले विषधर को बिल में ही बिलबिलाने दीजिये। उपरामता के उजबक उल्लू को प्रतिभा के प्रकाश में न आने दीजिये।"

बूढ़े सभापतिजी को क्रौञ्च कवि की कथा में बड़ा आनन्द आया। आपने बार बार चोंच चलाई और गरदन हिलाई। परन्तु जनता के वैराग्य-विरोधी होने के कारण क्रौञ्चजी की मुख-मढ़ी पर, मजबूरन '१४४ लीवर' का ताला ठोंक देना पड़ा।

इस समय सभापतिजी ने कहा—"महाशयो, वक़्त अधिक हो गया है, इसलिए कविवर कोकिलकुमार और कुल्लूक कविराज इन दो कवियों को अपनी-अपनी कविताएं सुनाने का और अवसर दिया जायगा। बस, फिर पदक-पुरस्कार की सूचना देकर सम्मेलन समाप्त हो जायगा। अब 'प्रतिबिम्ब-पन्थी' काव्य-कानन-केसरी कवि कोकिल-कुमारजी अपनी कविता सुनावें और अपने काव्य-कल्पतरु की छबीली छाया से सारे सभ्य-समाज को सुख पहुँचावें।" कोकिल-कुमारजी ने अपनी निगूढ़तम रुचिर रचना को सुनाते-सुनाते, सब लोगों को अज्ञेयवादवारिधि में डुबकी लगाने का आनन्द प्राप्त कराया। कोकिलकुमारजी ने अपटूडेट फ़ैशन की फबीली फ़साहत के फन्दे में फँस कर नीचे लिखी अलौकिक कविता पढ़ी—

विरद वाद्य मृदु मन्द अचलता के द्दगता अञ्चल में-
सुस्मित मत विस्मृत बाला के अनुनय अन्तस्तल में-
अभिधा की अनन्त आभा में सविधा के साधन में-
विभावरी, आभरी, अनिलभा के उद्दोत आनन में-

× × × × × ×

सुरति सदय सन्दर्भ सुसंयत नय नवधा नागर में-
विश्व विमोहन विपुल व्यथा के प्रभुता पांशु पगर में-
वरद विभा के वक्षस्थल में मृग-मरीचिका पट पर-
तरुणी के घटना घूँघट पर तरंगिणी के तट पर-

× × + × × ×

सौख्य सुधामय मनस्विता में मानहीन मानस में-
भौतिक तारतम्य सत्ता के पुण्य प्रेम पारस में-
प्रवर्तिता प्राञ्जलि नलिनी के नव नीरव गायन में-
सभ्य, सुरम्य, गम्य कानन में प्रतिभापूर्ण पवन में-

कवि कोकिल-कुमार की दार्शनिकता देखकर सारे सभासद दंग रह गये, सब लोग अपनी अड़ियल अक्ल को धिक्कारते हुए उनकी पुण्य-पंक्तियों की प्रशंसा करने लगे। 'धन्यवाद' के धुँगार और 'वाह-वाह' के बघार से सारा समाज सौरभित हो उठा!

सभापति श्रीगरुड़देवजी तो इस कविता के परम दार्शनिक तत्त्व को समझने के लिए समाधि लगा गए। परन्तु तो भी यह नितान्त निगूढ़ 'रहस्य' उनके महा मस्तिष्क में न आया। यहाँ तक कि उनकी प्रदीप्त प्रतिभा पर उनके आध्यात्मिक अर्थ की 'छाया' भी न पड़ी। अन्त में आप निराशावाद के वायु में बह कर आगे बढ़े और "ख़ैर" कहकर श्रीकुल्लूक कवि से पद्य-पाठ के लिए प्रार्थना की।

कुल्लूक कविजी अपनी क़लम-कटारी और स्वच्छन्दता की आरी लेकर कविता-कामिनी के कलित कलेवर की ओर झपटे। वह विचारी बलात्कार से बचने के लिये त्राहि! त्राहि!! करने और विना आई मरने लगी। करुणा का सागर उमड़ उठा, और दयालुओं का दिल घुमड़ उठा। अस्तु, सबसे प्रथम कविवर कुल्लूकजी ने जनता को नीचे लिखा स्वच्छन्द छन्द सुना कर

दोनों हाथों से 'वाह-वाह' बटोरनी शुरू की, आप अपनी अद्भुत शान में बोले—

खटूवा !

ओहो ! चतुष्पदी, निष्पदी तथा—
निर्भ्रान्त, अलक्षिता;—एवम् सापेक्ष सत्ता, सुरम्या—
महत्त्वमय—'मत्कुण' सेविता
'तक्षा' एवम्—
रथकार……………शयनाधिकार संयुक्ता
सम्पृक्ता—सुकीर्तिता !
सुधीन्द्र, 'रज्जु'—'रसरी' !
रता—नता; एवम् 'अवनता' !!!

कुल्लूक कवि की वदन-बांबी से क्रान्ति-कारिणी कविता-काकोदरी के निकलते ही सारे कविसमाज में आनन्द की आँधी आगई ! प्रसन्नता का पुल टूट पड़ा ! साधुवादों का पजावा लग गया ! "वाह ! कुल्लूकजी, क्या कहने हैं ? आपने तो छन्द-छैला की छाती में छुरी भौंक दी, पिंगल के पिटारे पर पत्थर पटक दिए, अलंकार अलबेले की अंतड़ियाँ निकाल लीं, रस में राख मिलादी और भावों को भट्टी में भून दिया।"

बड़ा ऊधम मचा, पार्टीबन्दी के पटाखे और गुट्टबाजी के गोले छूटने लगे। वाग्बाणों की वर्षा तथा विरोध के बवंडर ने नाक में दम कर दिया !

सभापति श्रीगरुड़देवजी इस काव्य-विप्लव को देख कर दङ्ग रह गये ! कुल्लूक कवि की कविता हुई या विद्रोह की बारूद जल उठी ! इसे कवि-सम्मेलन कहें या 'अनारकी' का अड्डा ? सहृदयता है या संगदिली ? शान्त ! शान्त !! मित्रो, शान्त ! सज्जनो, शान्त ! —देखो, कवि-सम्मेलन में कविता-कामिनी पर अत्याचार न करो,

इस अनघा अवला को अपने आवेशपूर्ण कोप-कुल्हाड़े का दुर्लक्ष्य न बनाओ। ठहरो, सुनो। मैं अपना अन्तिम भाषण स्थगित कर पदक-पुरस्कार की घोषणा करता हूँ—

"कविराज कङ्कदेव, कविरत्न क्रौञ्च तथा कविवर कारण्डव जी इन तीन सज्जनों की कविता सर्वोत्तम रही, इन्हें रत्नजटित हारों की लड़ियाँ तथा स्वर्णमय पैंजनियाँ प्रदान की जावेंगी। अब सबको धन्यवाद देकर सभा विसर्जित होती है।"

सभापतिजी की उपहार-घोषणा सुनते ही चारों ओर से "और हम?", "और हम?" का तूफ़ान उठ खड़ा हुआ। इतने कवियों में से केवल तीन!!! ऐसा अत्याचार! इतना अन्धेर!! यह जुल्म!!! पकड़ लो पक्षपाती प्रेसीडेण्ट को, मारो मनहूस को, फोड़ दो खोपड़ी, तोड़ दो तोमड़ी! आया कहीं का साहित्य-सिरकटा! देखो, भागा, भागा, दुम दबाकर भागा, मुँह छिपा कर निकला,—पकड़ो—दौड़ो, निकल न जाय, उड़ न जाय, कचूमर निकाल दो, क्या हमने कविताएं नहीं सुनाईं? हमने दिमाग़ का सेरों खून नहीं खर्च किया? क्या हम 'कवि' नहीं हैं? हमको पुरस्कार क्यों नहीं? मारो, मारो, देखना कहीं भाग न जाय। भागा, पकड़ो, पकड़ो!" निदान इस समय कवि-सम्मेलन में ऐसा धूम-धड़ाका हुआ, ऐसा शोर-सनाका मचा, इतना तूफ़ान-ए-बेतमीज़ी उठा कि अपनेराम की निद्रा टूट गई, सारा स्वप्नमय साहित्य-संसार नष्ट हो गया। अदृश्य जीवन के छायावाद के बदले दृश्यमान जगत् का जड़वाद दिखाई देने लगा। कवि कारण्डवों की कल्पना कुरंगी की कुलाचों के स्थान पर दुरंगी दुनिया सामने आ गयी। उठा, शौच-बाधा से निवृत्त हुआ; कलेवा किया और अपने काम में लग गया।

लीडर-लीला

लीडर एक ख़ास क़िस्म का समझदार जन्तु होता है, जो हर मुल्क और मिल्लत में पाया जाता है। उसे क़ौम के सर पर सवार होना और सभा-सोसाइटियों के मैदान में दौड़ना बहुत पसन्द है। उसकी शक्ल-ओ-सूरत इन्सान से बिल्कुल मिलती-जुलती है। वह गरमियों में अक्सर पहाड़ों पर किलोल करता मगर जाड़ों में नीचे उतर आता है। देखने में लीडर सादा सा दिखाई देता है, पर हक़ीक़त में वह वैसा नहीं है। खाने की चीज़ों में उसे सेब, सन्तरा, अंगूर, केले अनार वग़ैरा क़ीमती फल ज़्यादा पसन्द हैं। दूध तो उसकी ख़ास ग़िज़ा है। मौक़ा पड़ने पर ग़ल्ले के पूड़ी-पकवान को भी गले में उतार लेता है, मगर बहुत खुशी के साथ नहीं!

कहने को तो लीडर जन्तु है, मगर उसमें खुद्दारी का जज़्बा खूब जोशज़न रहता है। वह अपने ख़याल के ख़िलाफ़ न कुछ सुन सकता है, और न पोजीशन को कम होते देख सकता है। जिस तरह सरकार को सोते-जागते, उठते-बैठते, 'पीस एण्ड आर्डर' (शान्ति और सुव्यवस्था) का ध्यान रहता है, उसी तरह लीडर अपनी तक़रीर और तारीफ़ अख़बारों में छपी देखने के लिये फ़िकरमन्द नज़र आता है। वह औरों को अपने पीछे घसीटता मगर खुद किसी के साथ खिचड़ना पसन्द नहीं करता। जिस वक्त इस अजीब जन्तु के जिगर में क़ौम का दर्द उठता है उस वक्त वह इतना बेताब हो जाता है कि कभी तारघर की ओर दौड़ता है और कभी डाकखाने की ओर कबड्डी भरता है। ज़्यादा दर्द होने की हालत में उसकी बेचैनी का ठिकाना नहीं रहता।

यहाँ तक कि बड़े बड़े मजमों में खड़ा होकर बेतहाशा चीखता-पुकारता है। टेबुल पर हाथ मारता है और ज़मीन पर पाँव फटकारता है। आँखें सुर्ख कर लेता और दाँत पीसने लगता है। मुँह बनाता और हाथ घुमाता है। इधर को झुकता और उधर को झूमता है। इसकी ऐसी हौलनाक हालत देख कर लोग उसके पास पानी या दूध का प्याला रख आते हैं जिसे वह चुस्की ले ले कर पीता मगर चिल्लाना बन्द नहीं करता।

कभी कभी इस जन्तु की परेशानी, "खूँख्वारी" में तब्दील हो जाती है तो उसके लिये उसे मियादे मुक़र्ररा के लिये लाल फाटक के बड़े बाड़े में बन्द रहना पड़ता है, जहाँ न उसे हस्ब ख़्वाहिश दाना-चारा मिलता है और न मज़ेदार मैदान ही नसीब होता है। इस दुनिया में आकर पहले तो लीडर गुर्राता है मगर कुछ दिनों बाद उसकी हालत पालतू बकरी की तरह हो जाती है।

यह अजीब जन्तु अपने पाँव पर चलना बहुत कम पसन्द करता है। रेल के गुदगुदे गद्दे और मोटर के मुलायम तकिये देखकर उसकी तबियत बाग़बाग़ हो जाती है। घटिया सवारियों पर सवार होना उसे अच्छा नहीं लगता बल्कि वह वैसा करना कसर-ए-शान समझता है।

लीडर में एक बड़ी खसूसियत है। अपने बुलावे की डाक द्वारा सूचना पाकर उसकी 'सेहत ख़राब' हो जाती और 'अदीम-उल-फ़ुरसती' सामने आ जाती है। मगर ज्यों ही अरजेण्ट टेली-ग्राम पहुंचा त्योंही वह तन्दुरुस्त हुआ और उसने अपनी रवानगी का तार खटखटाया! दुनिया इधर से उधर हो जाय पर लीडरी तार का कुतार न होना चाहिये। अगर रवानगी का तार पा बहुत से लोग, फूलमाला लेकर, इस्तक़बाल के लिये रेलवे स्टेशन पर नहीं पहुँचते, तो लीडर बुरी तरह बड़बड़ाता और बिदक जाता है। कभी-कभी तो उलटा वापिस होते हुए भी देखा गया है।

लीडर जन्तु सड़ी-गली हवेलियों में रहना पसन्द नहीं करता. उसे फ़र्स्ट-क्लास कोठी के विना चैन नहीं और न नींद आती है। यह बातें करने में बड़ा कंजूस होता है, छोटे लोगों को तो पास भी नहीं फटकने देता। हाँ, कुछ बड़े आदमियों से घड़ी सामने रख कर थोड़ी देर गुफ़्तगू करने में ज्यादा हरज नहीं समझता।

ओहो! जिस समय इसे '१४४' नम्बर की लाल झंडी दिखाई जाती है, उस समय तो उसकी वही हालत हो जाती है जो बालछड़ या छारछबीला सूंघने वाली बिल्ली की होती है। कभी वह झंडी को फाड़ने के लिये दौड़ता है, कभी पीछे खिसक जाता है। कभी उछलता है, कभी कूदता है और कभी दूर से गुर्रा कर रह जाता है।

जिस प्रकार भेड़िया भेड़ को पुचकारता है उसी प्रकार लीडर पब्लिक के पैसे पर प्यार करता है। हिसाब-फ़हमी का प्रश्न उसकी 'इन्सल्ट' और जीवन-मरण की समस्या है। बाहरी दुनिया में लीडर लोगों को जैसा पुरजोश दिखाई देता है, वैसा वह अपनी गुफ़ा में नहीं नज़र आता। क्योंकि उसकी घरेलू और बहरेलू दो तरह की ज़िन्दगी होती है। जो लोग इस रहस्य को नहीं जानते वे अक्सर धोखा खा जाते और तकलीफ़ उठाते हैं।

लीडर जन्तु के मिलने-जुलने के भी कई तरीक़े हैं। किसी से वह खिल-खिला कर 'शेकदुम' करता है, किसी के साथ आधी हँसी हँसता है, किसी के आगे उदासीनता दरसाता और किसी के समक्ष मुँह फुला कर और भौंह चढ़ा कर अपने मनोभाव प्रकट करता है। जिसके भाग्य में जैसा बदा हो वैसा ही उसके साथ व्यवहार होता है। साधारण लोगों की शक्लों को जानते-बूझते भूल जाना और उनके किसी ख़त का उत्तर न देना लीडरेन्द्र की ख़ास ख़सूसियत समझनी चाहिये। लीडर की पोशाक बड़ी

विचित्र होती है। परिस्थिति को देख उसे रंग बदलना ख़ूब आता है। कभी बढ़िया लिबास इख़्तियार करता है तो कभी खद्दर की भूल लाद कर ही खुश हो जाता है। कभी-कभी ताम्बे के तार में शीशे के दो गोल-गोल टुकड़े हिलगा कर आँखों के ऊपर रख लेता है। भूल के थैलों में एक ओर स्याही भरी सटक लटकती रहती है और दूसरी ओर समय बताने वाली डिब्बी का दिल धड़कता रहता है।

एक दो नहीं, लीडर सैकड़ों और हज़ारों तरह के होते हैं। कोई राजनैतिक मैदान में उछल-कूद मचाता है, किसी ने अगाई-पिछाई तोड़ कर धार्मिक क्षेत्र में द्वन्द्व मचाना शुरू कर दिया है। कोई लीडर समाज-संशोधन की सड़क पर कुलाचें भरने में मस्त है। इनके भी हज़ारों भेद-उपभेद हैं। सबका वर्णन करने के लिये बड़ी पोथी चाहिये। अगर मौक़ा मिला और मजलिस भी जमी तो चैत्र कृष्णा प्रतिपदा की सभा में इस विषय पर विस्तृत व्याख्यान दिया जायगा। सब लोग उस दिन हवाई क़िले के लम्बे-चौड़े मैदान में, रात्रि के ठीक पौने तीन बजे पधारें।

घसीटानन्द को घें घें !!!

सुनो जी, सम्पादकजी ! बात सुनो; हम ऐसे वैसे, ऐरे ग़ैरे, अधकचरे, कुलेखक तो है ही नहीं, जो सोच-विचार कर या तबियत के "पैण्डुलम" को थाम कर कुछ लिखने बैठें। हम तो ठहरे सुलेखक और सुकवि-नहीं-नहीं-कवीन्द्र और सुलेखकेश्वर ! जिस समय लिखने लगते हैं उस समय क़लक कुरङ्गी की सी कुलाचें भरती हुई काग़ज़-कानन में खूब ही किलोल करती है। काले मुँह की लेखनी से जो निकल गया, धनी के भाग ! हमारी तहरीर क्या होती है, खुदा का फ़रमान होता है। मगर क्या बतावें, आजकल तो कुछ हमारा उत्साह फ़िक्र के शिकंजे में ऐसा कस गया है कि कुछ लिखने को ही जी नहीं चाहता। जब तबियत में जोश ही नहीं तो फिर क्या—

"गौहरे मज़मूँ निकलते हैं, मगर बेआबदार-
जब कि दरियाये तबीयत जोश पर होता नहीं।"

नहीं तो जनाब ! इस बन्दे नातवाँ ने अपनी अस्सी-नव्वे बरस की ज़रा सी उम्र में जो मलिका हासिल किया है, वह किस कम्बख्त की क़िस्मत में बदा था ? एक-एक दिन में दो-दो तीन-तीन गद्य-पद्य मय विस्तृत पुस्तकें तैयार कर देना तो ईंजानिब के दस्ते मुबारिक का मामूली करश्मा था। बन्दे की लेखनी की द्रुत गति देखकर देखने वाले 'पञ्जाब मेल' की हँसी उड़ा कर फकफक

करने वाली मोटरकार पर फक्किका फेंका करते थे। अब हम नहीं समझते कि लोग छन्द-शास्त्र और अलङ्कार-ग्रन्थों को पढ़ कर क्यों अपने समय को नष्ट भ्रष्ट किया करते हैं ? हमें तो अपनी ज़िन्दगी भर में बखु़दा इन ऊल जलूल बातों की ज़रूरत ही नहीं पड़ी ! हमने तो आज तक इन किताबों के दर्शन भी नहीं किये !! मगर—शायरी ! ओहो ! बस ग़ज़ब की होती है ! शायरी की शोहरत तो यहाँ तक बढ़ गई है कि साधारण कोटि के आदमी तो क्या बड़े-बड़े साहित्य-शत्रु भी उसकी मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा करते और दाद देते हैं। नीचे लिखी दो पंक्तियों पर तो 'वाह-वाह' के पुल बँध गये। दिल थाम कर और ज़रा होश सँभाल कर सुनिये—

हेच ऐंगज़ाइटीज़ न कर्त्तव्यम्
कर्त्तव्यम् ज़िकरे .खुदा,
.खुदा ताला प्रसादेन-
सर्वं कार्यम् फ़तह शवद।

मगर अब हमें बड़ा अफ़सोस होता है कि स्वतन्त्र विचार के हम जैसे 'निरंकुश कवि' भी कविता-कामिनी के कोमल कलेवर को कठोरता की कसौटी पर कसना चाहते हैं। चाहिये यह कि शायरी की घोड़ी की लगाम उतार कर उसे बड़ी आज़ादी से बिना अगाड़ी-पिछाड़ी के हिनहिनाने दिया जाय। ख़ैर-हाँ, एडीटर साहब, यह तो बतलाइये कि ये 'साहत्त समेलीन' क्या बला है ? हमें तो ऐसी नई-नई बातें पसन्द आती नहीं। भला देखिये तो,

उस साल हमने अपने नवनवोन्मेषशाली मस्तिष्क का सेरों .खून खर्च कर पूरे सवा दो सेर का पुलन्दा "साहत्त के परधान" को 'समेलीन' में पढ़ने के लिये भेजा था मगर उसका वहाँ किसी ने नाम भी नहीं लिया। हमारी नाबीना शायरी के पुरजोश मज़ामीन पर यह 'सेन्सर' का काम कैसा ? भला यह कोई बात है कि छन्दों के नियम, अलङ्कारों का उपयोग, रसों का संचार, भावों की भरमार आदि बातें न हों तो हमारी "शुहर-ए-आफ़ाक़" शायरी को लोग शायरी ही न कहें ! बाप रे बाप ! यह नई-नई बातें कहाँ से आ गईं ? कैसा ज़माना हो गया ? अघटित घटना घटने लगीं ! लोग हम जैसे शायरों की दिल-शिकनी करने में ज़रा नहीं हिचकते, जो हो, नई रोशनी के दिलचले लोग चाहे जो करें पर अपने राम तो 'राई घटें न तिल बढ़ें' वही पुरानी लकीर पीटते हुए, 'घें-घें' करे ही जायेंगे।

"प्रैक्टीकल-परमार्थ"

अरे साहब ! अर्थशास्त्र-अवधूत की अर्थी उठाकर, तिजारत-तवाइफ़ का तबला बजाना शुरू किया तो उसका भी फड़ाका उड़ गया ! चाकरीचन्द्रिका का चाहक चकोर बना तो वहाँ भी क़िस्मत की कृपा से "कोरम कोर चोबाल सौ !" मूज़ी मालिक ने साफ़ सुना दिया और खुले खज़ाने कह दिया—

चाकर है तो नाचा कर,
ना नाचे तो ना चाकर।

सो, दोस्त, चाकरी-चक्र में चकफेरी भरते-भरते जोश का जनाज़ा निकल गया ? तनदुरुस्ती के औंधे नगाड़े हो गये और साथ ही तोंद की भी कुकुडुमकूँ बोल गई !! इधर नौकरी की मार उधर फ़िकर की फटकार ! दोनों मिलकर एक और एक ग्यारह हो गये ? दस खाऊ एक कमाऊ ! बाप रे बाप ! जीवन हुआ या मरना ? आबादी कहूँ या बरबादी ? परिवार है या अत्याचार ? आह ! चिन्ता चुड़ैल ने तो चुप-चुप चुमकी ले-लेकर मेरे सुन्दर शरीर का सारा सार ही निचोड़ लिया ! अब असार संसार में मेरा जीवन भी निःसार बन गया। कहाँ जाऊँ क्या करूँ ? इधर जाऊँ या उधर मरूँ ? नाक में दम है और कान में आँखें। बड़ी परेशानी ! सख्त मुसीबत !! भाग्य-भड़वे को बहुतेरा तलाश किया ज़ोरों से पुकारा, चीख़-चीख़ कर आवाज़ दी, मगर वह हरामी किस की सुनता है। अन्त को अपने राम से न रहा गया और चाकरी चुड़ैल को चूल्हे में झोंक कर बन गये पूरे "निखिलतन्त्र स्वतन्त्र।" प्रारब्ध-पिस्तौल में कुयश-कारतूस डालकर लगे दानियों

के द्वार पर दनादन दागने ! पौराणिक लोग जिस गुणपुञ्ज गोमाता की पूँछ पकड़ कर वैतरणी तरते हैं, उसके 'नाम मात्र' ने मुझे परिवार-पारावार से पार कर दिया ! फ़र्श से अर्श पर जा बैठाया !! जिस हिन्दू-हृदय के आगे गोरक्षा के नाम पर गोलक गुनगुनाई उसी ने अण्टी टटोल या बटुआ खोलकर गोल-गोल ताम्रटूक इस 'परमार्थ' पेटी में पटक दिये। किसी ने इकन्नी की कन्नी दबाई और कोई दुअन्नी को 'दरिया-ए-शोर' करने लगा। कितने ही भइये तो चाँदी के चिलकइये हमारे हवाले कर मूछें मरोड़ने लगे। जिस समय अपने राम रेल के डिब्बे में कड़कती हुई आवाज़ से गोरक्षा का गीत गाते थे उस समय श्रोता सन्न और वक्ता प्रसन्न हो जाते थे। अहा ! अच्छी अपील की ! खूब चिड़ियाएँ फाँसी !! बड़ी सफलता हुई !!! इन भोंदू भक्तों से काफ़ी टके हाथ लगेंगे और घर चल कर विविध व्यञ्जन छकेंगे।" चमचमाती चपरास, लपलपाती रमीदबही, और गुनगुनाती हुई गोलक ने तो लोगों पर रौब डाट दिया। अगर कहीं हमने अपने गिरा-ग्रामोफ़ोन पर गो-रोदन रूप रैकर्ड चढ़ा दिया तब तो बाज़ी ही मार ली ! सोने में सुगन्ध आ गयी !! गिलोय नीम पर चढ़ गयी !!! हमारी गगनवेधी गर्जना ने थर्ड तो थर्ड सैकिण्ड और फर्स्टक्लास तक के मुसाफ़िरों के कानों पर तड़ाक से तमाचा जड़ दिया। वे भड़भड़ाते हुए उठे, और पूछने लगे—"क्या" एकचुअली "कुलीज़न", हो गया ! "यह था बन्दे की वाणी का प्रभाव और आमदनी भाव।"

अच्छा-फिर ? फिर क्या, लगी ईंट पर ईंट सवार होने और कन्नी खटकने। ग्राम भी खरीदे और धाम भी बनाये। विवाह भी किये और खुशियाँ भी मनाईं। हिसाब ?-हिसाब ? आख़िर किसी के दादा का कुछ देना था जो हमसे कोई हिसाब-फ़हमी का मुतालबा करता। अरे, पबलिक का पैसा पबलिक के पास ! किस का लेना और किस का देना ? कहाँ का जमाख़र्च और कैसी

रिपोर्ट ? हमने जो प्रचण्ड पुरुषार्थ किया था अब उसी का अनुसरण हमारा शिष्य-समुदाय भी कर रहा है। चेले माँग-माँग कर लाते हैं और अपने राम बैठे मौज उड़ाते हैं। "आल इण्डिया गोशाला" के दालान में दूध के दरिया बहने और घी के घान पड़ते हैं! बैलों की बहादुरी ने अलग खेतों को खुश-क़िस्मती अता कर रक्खी है। "अखिल भारतीय संस्कृत विद्यालय" भी अपना अच्छा काम कर रहा है। विद्यार्थी-वृन्द और अध्यापक महाशय को मेरी चाकरी और चापलूसी से फ़ुरसत मिल जाती है तो वे भी सप्ताह में, एक घण्टे किसी दरख़्त के नीचे बैठ कर "टभ्यामृभिस्" कर लेते हैं। लोग मुझे ब्रह्मचर्य का 'बायलर' या सदाचार का 'सन्दूक़' समझते हैं। परन्तु जिस समय मैं पोते को बग़ल में दबा कर, मचान पर बैठा-बैठा हुक्का गुड़गुड़ाता और दाढ़ी फटकारता हूँ उस समय बार-बार भूलने पर भी यह लोकोक्ति याद आये बिना नहीं रहती—

"दुनिया ठगिये मक्कर से।
रोटी खइये शक्कर से।"

चूहों का डेपूटेशन

(रुद्र भगवान् की सेवा में—)

परमगौरवास्पद, महामाननीय, सकल सुख-संहारक, अनेक दुःख-प्रचारक श्रीरुद्र भगवान की श्रीसेवा में, सादर प्रणाम! महामहिम! हम लोगों पर घोर अत्याचार हो रहा है। हमारा सारा जीवन दुःखमय है। हम लोगों को जिस सङ्कट का सामना करना पड़ता है उसका वर्णन करना महा कठिन काम है। मारे तकलीफ़ों के हमारा नाक में दम है। रात-दिन चैन नहीं पड़ता। कमज़ोर के कन्धों पर भारी भार लाद देना बड़ा अन्याय है। हे रुद्र भगवान् आप ही बताइये, कहाँ तो 'चिऊँ-चिऊँ' कर पेट भरने वाले हम क्षुद्र जीव और कहाँ हाथी की सूंड़ धारण करने वाले "हिज़ हैवीनैस" श्रीलम्बोदर महाराज! भला हमारा और उनका क्या सम्बन्ध? परन्तु आप लोग कुछ विचार नहीं करते। 'आव देखते हैं न ताव', बिना विचारे चाहे जो कुछ कर डालते हैं। रुद्रदेव! सच बताइये, हम लोग "मुण्डविशाल शुण्डसटकारी भाल त्रिपुण्ड कलाधर-धारी" श्रीगणेशजी के डबल डील को कैसे उठा सकते हैं? महाराज! रक्षा कीजिये! नहीं तो हम लोगों का अस्तित्व ही न रहेगा। हे देव! हमारे दुःखों की पराकाष्ठा यहीं नहीं हो जाती, और देखिये—"मरे को मारे शाह मदार।" आज कल मृत्युलोक में हम पर बेडौल तबाही आई हुई है। हमारा वंश धड़ाधड़ नष्ट हो रहा है, हम लोग लाखों की संख्या में काल के कवल बन रहे हैं। हज़रत इंसान को हम पर दया करनी चाहिये, परन्तु ऐसा नहीं हो रहा! डाक्टर कहलाने वाले विचित्र वेषधारी अजीव जन्तु हमें महामारी फैलाने वाला बताते हैं, जिसके कारण

लोगों ने ऐसे-ऐसे उपाय सोचे हैं कि हम विना आई मरे जाते हैं। कहीं हमारे घर खोद कर उनमें आग लगाई जा रही है, कहीं हमारे ऊपर मिट्टी का तेल उड़ेला जा रहा है। कहीं 'फनाइल' के छिड़काव से हमारी नाक सड़ाई जा रही है। कोई "एन्टीरैट' का आविष्कार कर हम से बैर निकाल रहा है।

हे भगवान्! क्या करें? कहाँ जायँ? कैसे करें? कुछ समझ में नहीं आता। हमें मार कर लोगों को सिंह पछाड़ने की सी प्रसन्नता होती है। हम लोगों ने संसार के साथ जो उपकार किया है उसे कोई नहीं जानता, सब भूल गये। यदि हम लोग शिव-लिंग के चावल चबा कर मूलशङ्कर को न चेताते तो दयानन्द बन कर देश का उद्धार कौन करता?

हे रुद्रनारायण! दया कीजिये, कृपा कीजिये, हमारे दुःखों दूर कर अक्षय पुण्य कमाइये, हम लोग अमूल्य वस्त्र और मोटे रस्सों को काट सकते हैं परन्तु शोक है कि अपना संकट-जाल काटने में असमर्थ हैं।

हे दयालु! जो कुछ हम लोग आपकी सेवा में निवेदन कर सकते थे, किया। अब आप माई-बाप हैं, जो चाहें सो करें। सम्भव हो तो हमें बचाइये। हमारी ताई धूँसदेवी अब दिखाई नहीं देती, देखना, रुद्रदेव! कहीं ऐसा न हो कि लोगों के अत्याचारपूर्ण व्यवहार से हम भी काफ़ूर हो जावें। आपकी ख़िदमत में वाजिब जान कर यह सब अर्ज़ किया, अब न्याय करना न करना आपके हाथ में है।

हम हैं, आपके निहायत ग़रीब मज़लूम—
चूहे लोग।

विनोदानन्द का व्याख्यान

अन्धेर की आँधी चल रही थी, गरदूँ पर गुबार के गट्ठर लदे पड़े थे, धर्महीनता की धाँय-धाँय से धरती धसकी जाती थी, सन्ताप का समुन्दर संकट से साँय-साँय कर रहा था। ऐसा सुखमूल सुसमय पाकर विनोदानन्द का मस्तिष्क-महासागर हर्ष-हुल्लड़ से हिलोरें भरने लगा। उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा और आप अपनी विनोद-वाटिका में बैठे 'बदी-अलफ़ाज़' व्याख्यान बड़बड़ाने लगे—

हज़रात और ख़्वातीन! आज तुम लोगों की खुश किस्मती या सौभाग्य है जो हम जैसे सुविख्यात व्याख्याता अपने पुर-असर लेक्चर और मुदल्ललवाज़ सुनाने को यहाँ तशरीफ फ़रमा हुए हैं। हज़रात! बहुत थोड़ा वक़्त हुआ जब आपने मुझसे भयंकर भाषण या विशाल व्याख्यान सुनने की इल्तजा की थी मगर महाशयान! उस वक़्त मैं कुछ न फ़र्मा सका था। उसके लिये मुझे आपकी बदक़िस्मती और अपनी कम कृपालुता पर बड़ा अफ़सोस है।

हज़रात! आज मेरा दक़ीक़ दिमाग़ दारू से दमक रहा है, तबीअत तबे की तरह तच रही है, मन मृदंग के मानिन्द मटक रहा है, हृदय में हर्ष हिलोरें हुदंग मचा रही हैं, जिस्म जोश ने जकड़ रक्खा है और कर कर्महीनता में कसे हुए हैं। ऐसे महा मौज़ूँ मौक़े पर महाशयो! मैं तकब्बुर का तम्बूरा लेकर उन्नति का ऊँचा राग अलापना चाहता हूँ। आप लोग आँखें मीच और कान मूँद कर बड़े ध्यान से सुनिये—

भाइयो ! आज चारों चोर असहयोग का अखाड़ा अड़ रहा है। सर्वत्र सुधार के संवाद सुनाई पड़ रहे हैं, सारे देश में स्वराज्य का संग्राम छिड़ चुका है, हर तरफ़ खद्दर की खरखाहट दिखाई देती है। आख़िर इन सबका सबब क्या है ? हमारी राय में इसका कारण लोगों की खुदग़रज़ी के सिवा दूसरा कुछ नहीं है। खुदा न करे अगर इन दिलचले दिलावरों ने 'शोराज का शरबत पी लिया तो फिर हमारी हेकड़ी को कोई कौड़ी में भी क्रय न करेगा। इस वक्त देखते हो, हमारी शान के आगे आन में जहानके कान कट जाते हैं। हमने जिसको जहाँ भिजवाना चाहा भिजवाया, जिस ओर धकेलना चाहा धकेला, जिधर फेंकना चाहा फेंका। वाहरे हम !–हम क्या हैं–खुदा के ख़लासी या 'गौड के गार्ड' हैं। बहुत दिनों की बात नहीं है—जब जनाब ! हमने देखा कि ये 'शोराज' के शिकारी अपने हठ का 'हंटर' लिए, अडंगधुन में अकड़ते हुए आगे बढ़े ही चले जाते हैं और किसी की कुछ नहीं सुनते तो फिर हमने उनको अपनी क़लम-कृपाण का चुलबुला चमत्कार भी दिखा दिया ! बड़े-बड़े वकील, अड़ीले एडीटर, विलायती बैरिस्टर, विलक्षण व्याख्याता, पठोरे पण्डित और मोटे महाजन सभी को एक लख्त लाद दिया ! फिर क्या था—

पीसो चक्की कातो सूत। पीछे पड़ा जेल का भूत ॥
जो न करोगे पूरा काम। तो फिर उधड़ जायगा चाम॥

× × × × × ×

सज्जनो ! इन हुल्लड़-पंथियों का कारागार में बन्द होना था कि चारों ओर से खद्दर की ख़रीदारी का ख़ातिमा हुआ। बड़े-बड़े बज़ाज़ जो विदेशी वस्त्र बेचने वालों की शक्लें देखकर बिगड़ उठते थे, मैनचेस्टर का माल मँगाने में मसरूफ़ हुए। जिन शानदार दुकानदारों ने विलायती कपड़े को कभी फ़रोख्त न करने का फ़ैसला किया था वे घाटे के चपाटे और फ़ैशन के सपाटे में ऐसे

फँसे कि प्रचण्ड प्रतिज्ञा को पटपर में ही चौपट कर दिया ! जिन लोगों के जिस्म पर खरदरा खद्दर का खाता खुला हुआ था, उन पर फिर मुलायम मलमल की मुस्किराहट दिखाई देने लगी। जिन सरों पर गांधी-टोपी का गुदड़गट्ठ रक्खा रहता था, वे फिर 'फ़ैशनेबुल फ़ैल्ट' से फ़ख़्रने लगे—

बिकता नहीं स्वदेशी माल ।
बिगड़ा हाय ! हमारा हाल ।।
कौन सहै घाटे की मार ?
किया विदेशी पर फिर प्यार ।।

वास्तव में आप लोगों को मालूम नहीं है, 'शोराज' इस तरह नहीं मिला करता, आज़ादी हासिल करने की यह तरकीब नहीं है। 'गोरक्षा-गोरक्षा' चिल्लाने से काम अञ्जाम को नहीं पहुँचता उल्टे ज़माने में उल्टे काम करने ही से कामयाबी होती है। लोगों ने धर्म को 'हौआ' बना रक्खा है, जिधर देखो "धरम-धरम" की धकधकाहट दिखाई देती है। भला 'धरम' भी कोई ऐसी ज़रूरी चीज़ है,जिसके पीछे इस तरह हाथ धोकर पड़ा जाय। कभी-कभी 'वक़्तन फ़वक़्तन' भोजन के बाद डकार लेते हुए ज़ोर से 'ओ३म्' कह लिया या दस-पाँच वर्षों में 'धरम' की याद करली, बस है ! साहिबान ! यह 'पालिसीं' का ज़माना है, इसमें कहा कुछ जाता है और करना कुछ पड़ता है। मन-वचन-कर्म तीनों में भेद-भाव रखने वाला ही आज कल आनन्द-सागर में ग़ोते लगाता है। ओह ! कुछ लोगों पर औरतों को पढ़ाने का भूत सवार है, कुछ लोग हिन्दी की चिन्दी पर ही फ़िदा हैं, कुछ को अछूतों के उठाने की ही सनक लगी हुई है, कोई किसी और ही ख़ब्त में बहा जा रहा है, मगर ये सब फ़जूल बातें हैं। भाइयो, अगर तुम्हारा उद्धार हो सकता है तो विलायत वालों से, अगर तुम उठ सकते हो तो बिदेशी भावों को लेकर, अगर तुम अधोगति

से बच सकते हो तो ग़ैर मुल्कों के 'नक्श-ए-क़दम' पर चलने से। हज़रात! अब तुमको इसके मुतल्लिक़ दो चार 'अशआर' सुना कर अपना व्याख्यान बन्द करता हूँ। कविसम्मेलन में पहुँचना है, वहाँ का सभापति मैं ही चुना गया हूँ।

देखिये, श्रीअविद्यानन्दजी क्या कह रहे हैं, उनके उपदेश-प्रद विमल वाक्यों को ध्यानपूर्वक सुनिये—

"सुधी-साधु को मान खाना न दो।
किसी दीन को एक दाना न दो॥
कभी गाय बूढ़ी नहीं पालना।
किसी मिश्र को दान दे डालना॥

× × × × × ×

रचो ढोंग पाखण्ड छूटे नहीं।
छुआछूत का तार टूटे नहीं॥
मिले फूट के, बोल बोला करो।
न अन्धेर की पोल खोला करो॥

× × × × × ×

महा मूढ़ता के संगाती रहो।
दुराचार के पक्षपाती रहो॥
जुड़ें चौधरी पंच पोंगा जहाँ।
न बोला करो बोल बीले वहाँ॥

× × × × × ×

बुरी सीख सीखो सिखाते रहो।
महा मोहमाया दिखाते रहो॥
विरोधी मिलें जो कहीं एक दो।
उन्हें जाति से—पांति से छेक दो॥

× × × × × ×

नहीं सींचना खेत संग्राम के ।
खड़े खेत जोता करो ग्राम के ॥
कड़े फूट के बीज बोया करो ।
सड़े मेल का खोज खोया करो ॥

× × × × × ×

अमीरा, धुआँधार छोड़ा करो ।
पड़े खाट के बान तोड़ा करो ॥
मज़ेदार मूँछे मरोड़ा करो ।
निठल्ले रहो काम थोड़ा करो ॥

× × × × × ×

जहाँ बेटियाँ बेचना धर्म है ।
जहाँ भ्रूणहत्या भला कर्म है ॥
बनें रण्डियाँ बालरण्डा जहाँ ।
वहाँ पाप जीता रहेगा कहाँ ॥

× × × × × ×

रुई, नाज देशी दिया कीजिए ।
विदेशी खिलौने लिया कीजिए ॥
खरी खाँड देशी न लाया करो ।
बुरी बीट चीनी गलाया करो ॥

× × × × × ×

पराई जमा मारनी हो जहाँ ।
अजी ! काढ़ देना दिवाला वहाँ ॥
करो चाकरी घूँस खाया करो ।
मिले वेतनों को बचाया करो ॥

× × × × × ×

गवाही कभी ठीक देना नहीं ।
कभी सत्या से काम लेना नहीं ॥

भले मानसों को सताया करो ।
खरे खूसटों को बचाया करो ।'

× × × × × ×

बहू बेटियों को पढ़ाना नहीं ।
घरेलू घटी को बढ़ाना नहीं ॥
पढ़ी नारि नैया डुबो जायगी ।
किसी मित्र की मैम हो जायगी ॥"

—'अनुरागरत्न'

मि० विनोदानन्द अभी अपनी पुरजोश 'स्पीच' को समाप्त भी न कर पाये थे कि 'औडिएन्स' की 'आफ़रीं-आफ़रीं !' की चिल्लाहट से कानों के परदे फटने लगे, दिल दहलने लगे और फेंफड़ों पर फफोले पड़ गये ! 'वाह-वाह' की 'बहर-ऐ-तवील' ने बेचारे विनोदानन्द की बात बीच ही में बन्द करदी और इस प्रकार विघ्न-बवंडर ने सारा मज़ा मिट्टी में मिला दिया !

'मतवाला'-'माधुरी' का विवाह !

लीजिए, महाशय ! जिस 'माधुरी–मतवाला' विवाह की सप्ताहों से चर्चा चल रही थी, वह हो गया और बड़े समारोह से हो गया। धूम धाम का धड़ाका और समारोह का सड़ाका देख कर अपूर्व आनन्द प्राप्त होता था। आज हम पाठकों को उसका सविस्तार संवाद सुनाते हैं, कान फटफटा कर और गर्दन झुका कर सुनिये—

'माधुरी' का महल लखनऊ और 'मतवाला' का मन्दिर कलकत्ता में है। फ़ासला बहुत था। बरातियों ने शिकायत की कि विवाह के लिए कोई मध्यवर्ती स्थान होना चाहिये। इस प्रश्न पर वर-वधू के मध्य बड़ा विवाद रहा। अन्त में दोनों की राय से बनारस में रस बरसाना ठीक ठहरा। कुछ 'मतवाला' टस से मस हुआ, कुछ 'माधुरी' ने क़दम बढ़ाये। बस, ठीक समझौता हो गया। बनारस सब को पसन्द आई और वहीं विवाह-सम्बन्ध की ठहरी ! ऐन १९८० की धुलहँडी के दिन बरात चढ़नी शुरू हुई। आगे-आगे संख घड़ियाल बजते जाते थे, कुछ लोगों के हाथ में सूप छलनी थे, कितने ही लोग 'केरोसिन आयल' के कनबुच्चे कनस्तर पीट रहे थे। 'मतवालाराम' मारे मस्ती के टाँग उठाये तथा त्रिशूल हाथ में लिये स्वयं ही कुदकते-फुदकते जा रहे थे। कभी-कभी आप "अमिय गरल शशि शीकर रविकर राग-विराग भरा प्याला" वाला गीत गाकर लोगों को प्रसन्न करते थे। बराती लोग अपनी-अपनी पेपर-कारों (Paper-Cars) में सवार थे। 'भारतमित्र', 'बंगवासी', 'कलकत्ता-समाचार', 'विश्वमित्र', 'देश', 'वैद्य', 'वेंकटेश्वर', 'विहार-बन्धु', 'अभ्युदय', 'प्रताप',

'प्रणवीर', 'कर्मवीर', 'विज्ञान', 'विद्यार्थी', 'आर्यमित्र', 'आर्य-मार्त्तण्ड', 'सद्धर्मप्रचारक', 'कर्त्तव्य', 'प्रेम', 'चित्रमय जगत', 'भविष्य', 'वर्त्तमान', 'अर्जुन' आदि सभी गण्यमान्य सज्जन बारात में मौजूद थे। बनारस का 'आज' स्वागत में संलग्न था, 'सूर्य' प्रकाश करता फिरता था, हिन्दी-के[illegible] चलता था 'भारत-जीवन' भोजन-भण्डार का अध्यक्ष बना बैठा था, 'निगमागम-चन्द्रिका' 'माधुरी' की आवभगत में लग रही थी। बड़ी धूम-धाम के बाद बारात 'ज्ञान मंडल' में पहुँची। बारातियों के भोजन के लिये लाल, पीली, काली, हरी सब तरह की स्याहियाँ–नहीं-नहीं-मिठाइयाँ मौजूद थीं। रहने के लिये २० × ३०, १७ × २७, १८ × २२, २० × २६ इत्यादि अनेक प्रकार के काग़ज़ी महल बनाये गये थे, पर किसी को कोई भी पसन्द न आया। लोग एक कमरे में बैठ कर परिणय-प्रसंग पर बात-चीत करने लगे। उधर 'माधुरी-मण्डल' का भी ख़ूब ठाठ-बाट था, बड़ी सजावट की गयी थी, शोभा देखने ही लायक़ थी। इसके साथ 'प्रभा', 'गृहलक्ष्मी', 'सरस्वती', 'मोहिनी', 'ज्योति', 'आकाश-वाणी', 'श्रीशारदा', 'शिक्षा', 'सम्मेलन-पत्रिका' आदि बीसियों सहेलियाँ अपनी अनुपम छटा से दर्शकों का मन मुग्ध कर रही थीं। बड़ी चहल-पहल थी। यहाँ का सारा प्रबन्ध 'चाँद', 'महिला-समाचार', 'स्त्री-धर्मशिक्षक' आदि 'मर्दाने-ज़नानों' के सुपुर्द था। अभिप्राय यह है कि वर-वधू दोनों पक्षों में सब प्रकार की सुव्यवस्था थी। मनोहर गीत गाये जा रहे थे, 'माधुरी' भी 'रामेश्वर' की कृपा से रंग बदल-बदल कर अपने सौन्दर्य की छटा दिखा रही थी।

२

हाँ, 'ज्ञान-मण्डल' की बात तो रह ही गई, वहाँ 'वेंकटेश्वर' और 'बंगवासी' ने एक नई लीला रच डाली। ये दोनों कहने लगे

कि ज्योतिष के विचार से बनारस में विवाह करना ठीक न होगा। जब-जब यहाँ सहयोगियों के सम्बन्ध हुए तब ही तब दुःखद परिणाम निकले हैं। 'भारत-जीवन' की दुर्दशा देखिये, 'तरंगिणी' के विना कैसा तड़पता रहता है। 'स्वार्थ' और 'मर्यादा' का तो ऐसा अशुभ विवाह हुआ कि आज दम्पति में से एक भी जीवित न रहा! 'निगमागम चन्द्रिका' इसी डर से अभी तक अविवाहिता बनी हुई है, नहीं तो क्या वह 'ब्राह्मण-सर्वस्व' से पाणि-ग्रहण न कर सकती थी? 'कर्त्तव्य' ने इस बात का समर्थन किया और कहा—"वस्तुतः कुछ ऐसी ही बात है, कानपुर में 'प्रताप' तथा 'प्रभा' के विवाह और प्रयाग में 'अभ्युदय' तथा 'सरस्वती' के सम्बन्ध से क्रमशः 'विक्रम' और 'बालसखा' उत्पन्न हुए पर बनारसी विवाहों का उल्टा ही परिणाम निकला है!" बहुत से सहयोगियों ने इस भ्रम का समर्थन किया पर 'आर्यमित्र', 'अर्जुन', 'आर्यमार्त्तण्ड' आदि को यह बात बहुत नापसन्द आई। उन्होंने अपनी दलीलों से इस 'ढिलमिल यक़ीनी' का खंडन किया। बात माक़ूल थी, सबको माननी पड़ी और बनारस में ही विवाह होने की बात पक्की रही।

इस मौक़े पर 'आर्यमित्र' ने एक बड़े मार्के की बात कही, वह बोला—"माधुरी-वधू से मतवाला-वर तोल-मोल तथा आयु में बहुत कम है, अतएव इस बेजोड़ विवाह से आर्यसमाजी विचार के लोग सहमत नहीं हो सकते।" सुधारक-दल 'निस्संदेह', 'निस्संदेह' कह कर 'आर्यमित्र' की हाँ में हाँ मिलाने लगा। एक बाराती तो बिगड़ कर यहाँ तक कहने लगा—"माधुरी और मतवाला के गुण, कर्म, स्वभाव नहीं मिलते! ठिकाना है—कहाँ एक सर्वाङ्ग सम्पन्ना सुन्दरी और कहाँ उछलता-कूदता मुँहफट मतवाला? कहाँ वह भारी भरकम रमणी और कहाँ यह निमुच्छा बावला? कहाँ उसकी सुहावनी वेश-भूषा और कहाँ इसकी दिगम्बर देह

पर लिपटी हुई लँगोटी! कहाँ उसका सँभला-सुधरा केश-कलाप और कहाँ इसकी बड़े-बड़े बालों वाली खोपड़ी! कहाँ 'माधुरी' के कल-कण्ठ की मनोहर माला और कहाँ 'मतवाला' की गर्दन से लिपटा नाग काला! कहाँ उसके कर-कमल का कलित-कङ्कण और कहाँ इसकी टेढ़ी टाँगों का खुरदरा खड़ुआ! कहाँ माधुर्य पान करने वाली माधुरी और कहाँ बोतल उड़लने वाला बौड़म! कहाँ खुले हुए सुन्दर-सुघड़ नेत्र और कहाँ मिची हुई औंधी-अनघड़ आँखें! कहाँ उस सुसभ्या का घूँघट उठाकर झाँकना और कहाँ इस असभ्य का त्रिशूली बन टाँग उठा कर उछलना! कहाँ उसकी मुस्किराहट और कहाँ इसकी बड़बड़ाहट! कहाँ दो वर्ष की दुलहिन और कहाँ सतमासा शौहर! कहाँ 'माधुरी' की मोहिनी मूरत और कहाँ 'मतवाल' की भौंड़ी सूरत! 'अन्तरम् महदन्तरम्!—'कहो तो कहाँ चरण कहाँ माथा।'

इसके बाद कई अन्य सुधारकों ने भी लम्बे-चौड़े व्याख्यान झाड़े परन्तु जब सब बातें तय हो चुकी थीं तब कोई कर ही क्या सकता था?

"मैं तू राज़ी, तो क्या करेगा काज़ी"

जब 'मतवाला' 'माधुरी' पर और 'माधुरी' 'मतवाला' पर मुग्ध है तो सुधारकों के ढोल की ढमाढम सुनता कौन है। सुधार विषयक सब प्रस्ताव व्यर्थ गये? अभी विवाह-संस्कार में देर थी, अतः बाराती लोग मण्डली बनाकर आपस में विनोद करने लगे।

'कर्मवीर'—"भाई, 'भारतमित्र' और 'बंगवासी' बड़े संयमी हैं, वृद्ध हो गये पर इन्होंने आज तक वर्णवाह्य विवाह नहीं किये। यदि वह चाहते तो बंगाल की 'वसुमती',

'विनोदिनी', 'स्वर्णकुमारी' या ऐसी ही किसी वधू से शादी कर सकते थे, पर उन्होंने ऐसा नहीं किया।'

'प्रणवीर'—"क्या 'वेंकटेश्वर-समाचार' किसी गुजरातिन से गँठ-जोड़ा कर वर्णवाह्य विवाह की "वाहवाही" नहीं लूट सकता था? पटेल साहब तो ख़ास गुजरात में ही हुए हैं, पर नहीं, यह हिन्दूधर्म का 'धग्गड़' ऐसा कर धर्म-भ्रष्ट नहीं हुआ।"

'अभ्युदय'—"'माधुरी' का विवाह 'आर्यमित्र' से होता तो अच्छा रहता क्योंकि इसको अपना २५ वर्ष का ब्रह्मचर्य-काल समाप्त किये एक साल हो गया।"

'प्रेम'— "परन्तु यह बात उसे पसन्द कब आती? वह ठहरा बात-बात में गुण,कर्म, स्वभाव तलाश करने वाला अक्खड़ आर्य!"

'अर्जुन'— "नहीं-नहीं, इन दोनों में परस्पर बड़ा विचार-वैभिन्य है, वह बेजोड़ विवाह हरगिज़ न करेगा। २५, २६ वर्ष के वर को नियमानुसार षोडशी वधू चाहिये।"

'विश्वमित्र'—"माधुरी के साथ 'प्रताप' या 'अभ्युदय' का सम्बन्ध·········"

'कलकत्ता-समाचार'—"अरे यार, क्या अक़्ल चरने चली गई है, 'प्रभा' और 'सरस्वती' किसकी जान को रोवेंगी।"

'वर्त्तमान'—"हमारे समाज में सहयोगियों की अपेक्षा सहयोगि-नियाँ कम हैं, इसी से ये क़याफ़े लड़ाने पड़ते हैं, वरना—

'मतवाला'—"तुम लोग भी ग़ज़ब कर रहे हो, जिस भलेमानस के विवाह में आये हो, पहले उसे तो 'चौपाया' बनने दो, बाक़ी सब बौंत फिर बौंत लेना।"

३

इतनी बातें करते-करते विवाह-वेला आ पहुँची, सब लोग मण्डप में गये। विवाह का कार्य आरम्भ हुआ, 'ब्राह्मण-सर्वस्व' मन्त्र पढ़ने लगा और 'ब्रह्मचारी' ने क्रिया करानी शुरू की। 'मतवाला' नाचता जाता था और 'माधुरी' संकोच से धरती में धँसी जाती थी। बाराती लोग क़हक़हा मार कर हँस रहे थे। 'मतवाला' का छोटा भाई 'रसगुल्ला' वर-वधू की ओर इशारा करके कहता था—

"इन मम पुरुष न उन सम नारी।
जनु विरंच सब बात सँवारी॥"

अहा! फेरे फिरने में बड़ा आनन्द आया, 'मतवाला' की सात डगें माधुरी की एक पद्दी के बराबर होती थीं, 'माधुरी' चलते में झुकती जाती थी और 'मतवाल' उचक-उचक कर ऊँचा उठने की कोशिश करता था। ख़ैर, ज्यों-त्यों वैवाहिक कृत्य समाप्त हुआ. 'आकाशबाणी' ने फूल बरसाये, 'ज्योति' ने आर्ती गाई, 'प्रभा' निछावर करने लगी, 'सरस्वती' ने स्वागत किया। दूसरी ओर से वृद्धों ने दम्पति को आशीर्वाद देना शुरू किया।

'भारतमित्र'—

"अचल होहि अहिवात तुम्हारा।
जब तक घिसे न टाइप सारा॥"

'बंगवासी'—

"जीवित रहैं बधू-वर प्यारे।
काग़ज़ फटें न जब तक सारे॥"

'वेंकटेश्वर'—

"जीबित रहै ईश यह जोड़ा।
जब तक वर के कर में कोड़ा॥"

'प्रेम'—

"रहै प्रीति निशिवासर पक्की।
जब तक चलै भूत की चक्की॥"

'अभ्युदय'—

"सारस जोड़ी तबलों जीवे।
जब लों 'मतवाला' मद पीवे।।"

आशीर्वाद के बाद बरात तो विदा हो गई, पर वर-वधू के बीच विवाद बना हुआ है। वह कहती है—"तुम्हें लखनऊ के अमीनाबाद पार्क में रहना पड़ेगा।" वह कहता है—"तुम्हें कलकत्ता के शंकर-घोष लेन में घर बसाना होगा।" दोनों अपने-अपने हठ पर डटे हुए हैं। विशेषज्ञों का कहना है कि अगर इस विषय में समझौता न हुआ तो बनारस में बना रस विष बन जायगा, और फेरों को फेर कर भाँवरों के बखिये उधेड़ने पड़ेंगे।

अल्हड़राम की 'रें रें'

हिन्दू, सुनो खोल कर कान ।
हो जाओ बिलकुल वीरान ॥
ऋषि-मुनियों को जाओ भूल ।
काटो वैदिक धर्म-बबूल ॥

तृप्यन्ताम्

कायरता पर प्रेम पसार ।
करो वीरता का संहार ॥
पिटते रहो सिहाय सिहाय ।
निकले नहीं नेक भी हाय ॥

तृप्यन्ताम्

मन्दिर-मूर्ति होंहि बरबाद ।
करो न तुम लेकिन फ़रियाद ॥
मिटो मिटाओ अपना मान ।
यही दोस्ती की पहचान ॥

तृप्यन्ताम्

विधवाएँ बहकाई जायँ ।
बरबस यवन बनाई जायँ ॥
पर, तुम सोओ चादर तान ।
यही दोस्ती की पहचान ॥

तृप्यन्ताम्

बालक नित्य चुराये जायँ ।
फुसलाये धमकाये जायँ ॥

देखो, पर कुछ देहु न ध्यान।
यही दोस्ती की पहचान॥
तृप्यन्ताम्
कट-कट कटे सदा गो-वंश।
उचित नहीं देना पर, दंश॥
सहो मानसिक कष्ट महान।
यही दोस्ती की पहचान॥
तृप्यन्ताम्
भजो भक्ति से 'मुसलिम-लीग'।
अपनाओ आकर 'तबलीग'॥
तानो शुद्धी की मत तान।
यही दोस्ती की पहचान॥
तृप्यन्ताम्
उर्दू का उत्कर्ष दिखाय।
हिन्दी का दल दर्प दबाय॥
वेद छोड़ कर पढ़ो क़ुरान।
यही दोस्ती की पहचान॥
तृप्यन्ताम्
दलितों को दो और दबाय।
भागें 'धर्मभीरु' घबराय॥
बनें मुसलमाँ या कृष्टान।
यही दोस्ती की पहचान॥
तृप्यन्ताम्
विधवाओं का करना ब्याह।
है हिन्दू को सख़्त गुनाह॥
नष्ट-भ्रष्ट हो ऋषि-सन्तान।
यही दोस्ती की पहचान॥

तृप्यन्ताम्

कॉंगरेस के कट्टर वीर ।
बन हिन्दू को कहो हक़ीर ॥
लुटने दो जन-धन-ईमान ।
यही दोस्ती की पहचान ॥

तृप्यन्ताम्

करो "खिलाफ़त" जाओ जेल ।
संकट सहो बताओ खेल ॥
समझो कभी न 'कसरे शान' ।
यही दोस्ती की पहचान ॥

तृप्यन्ताम्

हत्यामय वर्बर व्यापार ।
सह-सह मारे अत्याचार ॥
बने रहो बिलकुल नादान ।
यही दोस्ती की पहचान ॥

तृप्यन्ताम्

होकर तुम बाईस करोड़ ।
छः करोड़ की करो न होड़ ॥
दे दो उनको 'सीट' समान ।
यही दोस्ती की पहचान ॥

तृप्यन्ताम्

हिन्दू जाति रसातल जाय ।
पर प्यारा भारत बच जाय ।
हो स्वाधीन जल्द भगवान !
करके धर्म-कर्म क़ुरबान ॥

हुक्के की हिस्ट्री

उफ़ ! सुधारकों ने मेरा नाक में दम कर दिया ! जिस सभा में जाइये मेरा विरोध ! जिस सोसाइटी को देखिये मेरी दुश्मन !! जिस संस्था का निरीक्षण कीजिये मेरी बग़ावत !!! अरे साहब ! में क्या हुआ लोगों की आँखों का कांटा हो गया ! कोरा वाचनिक विरोध होता सो भी नहीं, लोगों ने मुझे काया-कष्ट देकर अङ्ग भङ्ग तक कर डाला ! किसी ने मुकुट फोड़ा, किसी ने गरदन पर ईटें बजाईं, कोई दिल पर दुहत्थड़ मार कर वीरता दिखाने लगा और किसी ने फैफड़े पर पत्थर पटक दिया ! निदान-जिससे जिस तरह बना मेरा वंश-विनाश करने लगा। परन्तु मुझे देखिये, मैं नाना प्रकार के सङ्कट झेलता, मुसीबत ठेलता लोगों के मुंह लगा ही रहा ! भाइ क्या कहते हो, मैं, तो मैं कभी घूरे की भी फिरती है। देखते नहीं, जो लोग एक दिन मुझे मारने को दौड़ते थे आज वे शुद्धी के मैदान में बैठ कर मेरी परिस्तिश कर रहे हैं।

मेरी कारगुजारी ही ऐसी है। औरङ्गज़ेब की तेज़ तलवार को जिस काम के करने में देर लगती थी उसे मैं एक 'गुड़गुड़ाहट' में करा देता हूँ। शुद्धि-सभा को जितना मुझ पर भरोसा है उतना बेचारे वेद-शास्त्रों पर भी नहीं। मैंने अब तक लाखों बिछुड़ों को उनके भाइयों से मिला दिया ! पहले मेरी शक्ल से नफ़रत की जाती थी, पर, अब दस दस हज़ार की सभा के बीच, बड़े-बड़े राजे-महाराजे, साधु-संन्यासियों और पण्डित-पुरोहितों की मौजूदगी में मेरी तूती बोलती है !! मेरी मधुर ध्वनि सुनते ही जनता 'जय-जयकार' करने लगती है। लोग मेरी मृदुल मूर्ति की ओर टकटकी

लगाये देखते रहते हैं। अगर मैं नहीं तो कुछ भी नहीं और मैं हूँ तो सब कुछ! कोई नहीं पूछता कि वेद क्या कहते हैं? शास्त्र क्या अलापते हैं? स्मृति की क्या सम्मति है? पण्डित क्या बखानते हैं? सबकी एक बात—"हुक्का-पानी हुआ कि नहीं?" "हाँ हो गया?"—"अच्छा तो अब रोटी-बेटी होने दो, सगाई चढ़ने दो बारात बढ़ने दो और पण्डित को विवाह पढ़ने दो।"

देखी मेरी शक्ति और परखा मेरा पराक्रम? है मुझ में कुछ करामात? आधुनिक भारत ने बस दो नवीन आविष्कार किये हैं, एक मेरा और दूसरा मेरे सौतेला भाई चरखे का? समाज और देश का अगर सुधार होगा तो हम दोनों के द्वारा। देखने में साधारण पर काम करने में हम लोग असाधारण हैं। अगर सन्देह हो तो भारतीय शुद्धि-सभा के महा मन्त्रीजी या कांग्रेस कमेटी के प्रेसीडेण्ट साहब से हमारी कारगुजारी की रिपोर्ट तलब कर ली जावे।

---

१४४ !!!

अरे क्या पूछते हो-मेरा नाम '१४४' है। मैंने बड़ों-बड़ों का मान-मर्दन कर दिया! पुष्प-शय्या पर शयन करने वालों को कारागार की कंकरीली धरती पर सुला दिया! सिंह की तरह गर्जने वाले वक्ताओं के मुँह पर ऐसा मुछीका लगाया कि उनकी बोलती बन्द करदी! जो काम बड़ी-बड़ी शक्तियों से महीनों में नहीं हुआ उसे मैंने मिनटों में कर दिखाया!! जिस सभा मण्डप में, मैं पहुँच गई उसमें बस मैं ही मैं मटकने लगी। बड़े-बड़े मुझ से मग़ज़ मार कर मर गये, पर, किसी से मेरा बाल बांका भी न हुआ मैं मौम की तरह इतनी मुलायम हूँ कि मजिस्ट्रेट-मदारी चाहे जिस ओर मुझे घुमा सकता है। साथ ही मैं वज्र की तरह इतनी कठोर भी हूँ कि जहाँ पञ्जे अड़ा देती हूँ फिर सम्पटपाट किए बिना नहीं टलती।

कहो, ख़बर है असहयोग आन्दोलन की! पता है 'नानको-आपरेशन मूवमेंट' का!! कैसे करश्मे दिखाये!! क्या गुल खिलाये!! क़ितना कौतुक किया!!! रोज़ यही सुन पड़ती थी—"आज फ़लाँ लाल लद गये, कल अमुक दास गये, परसों इमके देव बेड़ियाँ खटका रहे हैं, अतरसों ढिमके दत्त हथकड़ी पहने जा रहे हैं।" भाई, सच समझना, मेरी बदौलत लोगों में हिम्मत आ गई। जो लोग क़ैद के नाम से कानों पर हाथ रखते थे वे भी मेरी ललकार पर एक बार 'जेल की चिड़िया' बनने को तैयार हो गये। और तो और अबला कहाने वाली स्त्रियाँ भी सबला बन बैठीं! ह ह ह ह ह! इन बातों में मैं खूब मशहूर हो गई हूँ! मेरा नाम शैतान की तरह 'शोहर-ए-आफ़ाक़ हो गया है!! मेरी सर्वतोमुखी गति है।

मैं पहले ही मोम की तरह मुलायम और वज्र की तरह कठोर बन चुकी हूँ। राजनैतिक दंगल से जी ऊब उठा तो अब मेरे मदारी ने मुझे धार्मिक क्षेत्र की नाप करने को भेजा है। 'नगर-कीर्तन' और 'रामलीला' पर मैंने अपना सिक्का जमाया है? इन धूम-धड़ाकों पर अपनी धाक बिठाई है!! है किसी की हिम्मत जो मुझ से मुँह मोड़ कर मैदान में डटे? मिला कोई जिसने मेरा मान-मर्दन किया! 'ह ह ह ह' मैं क्या हूँ, शक्ति का कोष और बल का भण्डार हूँ!

अहा! मेरे नाम में तो बड़ी ही विचित्रिता है। मैं तीन अंकों से बनी हूँ, जिनका योग नौ होता है। संसार का सारा गणित शास्त्र इन ९ अंकों में ही समाप्त हो जाता है। अर्थात् मैं इस 'अंकशास्त्र' की पड़दादी हूँ! या यों कहिये कि जनता से पूजा पाने के लिए 'नवग्रह' स्वरूप हूँ! मैं एक हूँ और चार-चार भी; अर्थात् संसार को उपदेश देती हूँ कि एक ईश्वर पर विश्वास रखते हुए 'काम', 'क्रोध', 'मद', 'लोभ' से बचो और 'धर्म', 'अर्थ', 'काम', 'मोक्ष' की प्राप्ति में प्रयत्नवान हो जाओ! 'पोलिटिकल पार्टी' व्यर्थ ही मुझ से भयभीत होती है—मेरा १ उसे एकता का बोध कराता है; ४ 'साम', 'दाम', 'दण्ड', 'भेद' बताता है, और दूसरा ४ चरखा, करघा, खद्दर एवम् अछूतोद्धार की ओर ले जाता है। समझे! मैं इतनी विशाल और ऐसी व्यापक हूँ!! मैं लोगों से मैत्री करने आती हूँ, लोग मुझे देखकर बिदकते हैं—कोसते हैं!! इसमें मेरा क्या दोष? मैं क्या जानूँ? मेरा मदारी जानें जो मेरी डोरी इधर से उधर और उधर से इधर करता रहता है—

'वाकी माया मोहि नचावे,
मैं कठपुतली वह डोरी है-
दईमारे भारत होरी है।'

कवि-सम्मेलन की 'धड़ाकधूँ'

रात के ठीक १२ बजे, विनोद-वाटिका के बाड़े में कविसम्मेलन का कार्य प्रारम्भ हुआ। भारतवर्ष के प्रायः सभी सुप्रसिद्ध हिन्दी कवि मौजूद थे। जो लोग किसी विशेष कारण से न आ सके थे उन्होंने अपनी कविताएँ भेजकर ही सम्मेलन से सहानुभूति प्रकट की थी। सम्मेलन के सभापति निर्वाचन का प्रस्ताव होने पर मि० विनोदानन्दजी सबसे पहले बोल उठे—"मेरी राय में, मैं ही इस पद के लिए अधिक उपयुक्त हूँ, क्योंकि न तो मैंने पिंगल पढ़ा है, और न किसी छन्द-शास्त्र का अनुशीलन किया है। न अलंकार जानता हूँ और न रसों का ही आस्वादन कर पाया हूँ। पर, मेरी शायरी, ओह! ग़ज़ब की होती है, सुनते ही लोगों के दिमाग़ चक्कर काटने लगते हैं। तबीअत उबल उठती है, दिल दहल जाता है। मैं समझता हूं, मेरी ऐसी जौलानी देख कर ही किसी ने यह बात कही है—"Poets are born not made" अर्थात् शायर लोग पैदा होते हैं, बनाये नहीं जाते। उठती हुई तबीअत पर किताबों का गट्ठर लादना भारी भूल है, मैंने अपने ऊपर यह जुल्म नहीं किया। उम्मेद है कि आप लोगों ने मेरा मफ़हूम समझ लिया होगा और आप मेरे लिए ही राय देंगे।" कवि समाज विनोदानन्द की बातें सुन कर दंग रह गया और सर्व सम्मति से आप ही सम्मेलन के सभापति बनाए गये।

आपने सभापति का आसन ग्रहण करते हुए काव्य सम्बन्धी जो बातें कहीं वे इतनी स्थूल थीं कि पाठकों की सूक्ष्म समझ में नहीं घुस सकतीं, इसलिए उनका यहाँ उल्लेख न किया जायगा।

ख़ैर, सभापतिजी की आज्ञा से कवि-कुल-कंकड़ श्रीयुत चटपटानन्दजी ने अपनी हृदय-फाड़क और लताड़-झाड़क आवाज़ में कविता-कपोतनी के पंख उखाड़ने शुरू किये –

"पापी पेट भरन के कारन दर-दर दुरे फिरा करते हो।
कुत्तों की सी पूँछ हिला कर नाक ज़मीन घिसा करते हो॥
पा करके फिर वेतन थोड़ा हाथ से हाथ मला करते हो।
कालिज डिगरी पाय हाय! जब सरविस खोज किया करते हो॥

× × × × × ×

सादा कपड़े पहिन ओढ़ कर ऑफ़िस जाने में डरते हो।
गाढ़े की टोपी से नफ़रत सिर पर हैट धरे फिरते हो॥

× × × × × ×

सनद सार्टीफ़िकट हाथ में, सेवा करने को फिरते हो।
ख़ाकसार ख़ादिम बन करके अर्ज़ी पेश किया करते हो॥
सौ-सौ बार सलाम झुका कर मुँह की ओर तका करते हो।
कालिज डिगरी पाय हाय! जब सर.................................

अभी चटपटानन्दजी अपनी कविता को समाप्त भी न कर पाये थे कि झट श्री झटझटानन्दजी दहाड़ने लगे—"बैठो-बैठो, तुमने कविता के कण्ठ पर कुठार चला दिया! न अनुप्रास का पता और न छन्द की गति का ध्यान! 'सरविस' की सनक में सबको 'साधुवाद' कह दिया! बैठो बैठो तुम्हारी शायरी से शुअरा का कलेजा कांपने लगा है।'

सभा में गोलमाल होता देख कर मिस्टर प्रेसीडेण्ट "ऑर्डर प्लीज़"–"ऑर्डर प्लीज़" का प्रलाप करते हुए बोले—'हज़रात! अब आप लोग 'शुतर बेमुहाल' की तरह इधर-उधर न दौड़ें। मैं एक 'शमस्या' देता हूँ, सब साहबान इतमीनान के साथ उसकी पूर्ति करें और एक के बाद दूसरे साहब सुनाते चलें।'

समस्या—

"नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद।"

कम्बख़्त कवि—

हो जावें हम भारतवासी सब के सब बरबाद।
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ॥

कठोर कवि—

विधवा-गाय-अनाथों की हाँ, नेक न आवै याद।
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ॥

कुतर्की कवि—

सन्ध्या, हवन, बेद की बातें समझें सब बकवाद।
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ॥

काला कवि—

ब्लैक वारनिश सी बौडी पर कोट-हैट लें लाद।
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ॥

कट्टर कवि—

भारत पड़े भाड़ में चाहे, घटे न पद-मर्याद।
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ॥

कोपरेटर कवि—

रहें गुलामी के गड्ढे में करें न दाद-फ़िराद।
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ॥

कर्मवीर कवि—

कोरी बात बनाकर कर दें भारत को आज़ाद।
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ॥

क्रिश्चियन कवि—

ब्लकवृन्द को मिलै हमारे ईसा का सुप्रसाद।
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ॥

कक्कड़ कवि—

हलुआ खाकर खीर सपोटें तऊ न आवे स्वाद।
नाथ! ऐसा दो आशीर्वाद॥

कृपण कवि—

खन्ना से उपहार खनन की बीत न जावे म्याद।
नाथ! ऐसा दो आशीर्वाद॥

कौरस्पोंडेण्ट कवि—

भेजूँ छाँट-छाँट छपने को नित्य अशुभ संवाद।
नाथ! ऐसा दो आशीर्वाद॥

करीम कवि—

ज़रा-ज़रा से वाक़आत पर बरपा करें फ़िसाद।
नाथ! ऐसा दो आशीर्वाद॥

कारपोरेशन कवि—

काम न करना पड़े शहर में बढ़े सड़ाँयद-खाद।
नाथ! ऐसा दो आशीर्वाद॥

कौमर्स कवि—

खद्दर और स्वदेशीपन का चढ़े न अब उन्माद।
नाथ! ऐसा दो आशीर्वाद॥

कण्टक कवि—

भंगी, डोम, चमार क़ौम का सुने न आरत नाद।
नाथ! ऐसा दो आशीर्वाद॥

कुशासन कवि—

भारत के सब स्वत्व छीन कर करते रहें प्रमाद।
नाथ! ऐसा दो आशीर्वाद॥

हवाई कवि-सम्मेलन

[अब की बार लोगों के दिमाग़ में फिर कवि-सम्मेलन का ख़ब्त सवार हुआ, बहुत आन्दोलन मचाया और अन्त में सर्व सम्मति से निश्चित हुआ कि इस वर्ष सम्मेलन, ज़मीन और आसमान के बीचों-बीच करना चाहिये। बस, इस काम के लिए एक जय्यद ज़ेपलेन (हवाई जहाज़) मंगाया गया, जिसमें बैठ कर कवि-समाज आकाश की ओर उड़ा। वहाँ से विना तार के तार द्वारा जो समाचार उपलब्ध हुए हैं, वे नीचे दिये जाते हैं—सम्पादक।]

अहा ! वायुयान में बड़ा आनन्द आ रहा है। यहाँ आकर कवि लोगों के मस्तिष्क में एक अद्भुत स्फूर्ति पैदा हो गई है। लोगों के दहकते दिमाग़ मे शायरी के शोले बड़ी तेज़ी से फूट रहे हैं। नाम कहाँ तक गिनाऊँ, प्रसिद्ध-प्रसिद्ध सभी कवि मौजूद हैं। आज रात को पौने दो बजे से कवि-सम्मेलन की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। समस्या थी—"आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना"। हिन्दी समस्या के स्थान पर इस उर्दू 'तरह' को सुन कर कविसमाज बेतरह नाराज़ हुआ ! घनघोर वाग्युद्ध होने लगा, ख़ूब लनतरानियाँ फिकीं ! घूँसे-मुक्कों तक की नौवत आ गई ! लोग वायुयान से असहयोग तक करने को तैयार हो गये ! पर, सम्मेलन के प्रधान श्रीयुत काव्य-कण्टकजी ने अपनी अपूर्व योग्यता द्वारा सब का समाधान कर दिया और उक्त उर्दू समस्या पर ही पूर्तियाँ पढ़ने की आज्ञा दी। प्रधान की 'रूलिङ्ग' सबको माननी पड़ी और कवियों ने एक एक करके पूर्तियाँ सुनानी शुरू कीं, कुछ पूर्तियाँ इस प्रकार थीं—

समस्या—

"आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना।"

पूर्तियाँ—

संवाददाता कवि—

शहरों में घूम-फिर कर ख़बरों को खोज लाना।
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना॥

पाचक कवि—

पूरी-कचौरी करना या खीर का पकाना।
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना॥

भक्त कवि—

चौकी पै पाठ करना और बार बार न्हाना।
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना॥

पतित कवि—

वचनों को भंग करना लुटिया सदा डुबाना।
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना॥

लेखक कवि—

ले लेख दूसरों के निज नाम से छपाना।
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना॥

भुक्खड़ कवि—

बेकूत पेट भरना दस बार दस्त जाना।
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना॥

'डायर' कवि—

निर्दोष भाइयों पर गन-गोलियाँ चलाना।
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना॥

मियाँ कवि—

बहका के हिन्दुओं को 'क़लमा' उन्हें पढ़ाना।
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना॥

निकम्मा कवि—

करना न काम कुछ भी पर, ख़ूब बड़बड़ाना।
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना॥

स्वार्थी कवि—

लोगों से ठग के खाना और रोज़ गुरगुराना।
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना॥

कौंसिल कवि—

बनकर प्रजा का प्रतिनिधि कुछ भी न कर दिखाना।
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना॥

म्युनिसिपल कवि—

करके असावधानी सब शहर को सड़ाना।
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना॥

करुण कवि—

निज देश-दुर्दशा पर आँसू सदा बहाना।
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना॥

गायक कवि—

स्वरहीन गीत गाना, बेताल 'गत' बजाना।
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना॥

ज़मीदार कवि—

आसामियों को दुख दे 'कर-भेज' का बढ़ाना।
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना॥

वकील कवि—

अभियोग लड़-लड़ा कर शुकराना खूब पाना।
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना॥

वैद्य कवि—

अल्पज्ञता के कारण रोगी का दम घुटाना।
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना॥

कवियों की समस्या-पूर्तियों पर एकदम 'वाह-वाह' और 'मरहबा-मरहबा' की आवाज़ आने लगी। कितने ही मन चले तो मारे प्रसन्नता के पेट पीटने लगे। बड़ा कोलाहल हुआ। जहाज़ का कप्तान समझा कि कोई आफ़त आई! दंगा हो गया!! चट उसने 'ज़ेपलेन' की गति ज़मीन की ओर की। थोड़ी देर में ही विमान नीचे आगया। प्रेसीडेण्ट ने कहा—"लो, अब आप लोग उतरें और अपनी इच्छापूर्ण करें। आप लोगों ने कविता तो कुछ की नहीं, अपनी-अपनी ख्वाहिश का इज़हार ज़रूर किया है। अच्छा, अब आप आज़ाद हैं, जिसका जी जिधर चाहे उधर वह जा सकता है। सम्मेलन बरख़ास्त किया जाता है।"

'चपरपंच' का चीत्कार

१

सुनो, हुन्दुओ! बात मेरी सुनो।
कलेजा पकड़ कर सिरों को धुनो॥
ग़ज़ब हो रहा है निहारो ज़रा।
धरम को न इस भाँति मारो ज़रा॥

२

न मर्याद का ध्यान तुमको रहा।
न मानो चपरपञ्च का कुछ कहा॥
बड़े उग्र, उदण्ड तुम हो रहे।
बड़प्पन बड़ों का वृथा खो रहे॥

३

अगर जाति का चाहते हो भला।
दबोचो सदा संगठन का गला॥
न जीती रहे राँड 'शुद्धी सभा'।
बुझादो, अरे! एकता की प्रभा॥

४

अछूतादि का नाम भी तो न लो।
गिरों में लपक लात दो और दो॥
अगर वे विधर्मी बनें तो बनें।
हमारी सदा चैन ही में छनें॥

५

कभी भूल कर भी न आगे बढ़ो।
गढ़े से निकलकर न गिरि पै चढ़ो॥

कढ़ो 'कुप-मण्डूकता' धारिये ।
छुआछूत का जाल विस्तारिये ॥

६

कलाक़न्द पूड़ी उड़ाया करो ।
मगर, दाल-रोटी न खाया करो ॥
यही शुद्धता का महा मर्म है ।
सुनो, पण्डितो ! बस परम धर्म है ॥

७

नहीं हानि यदि गात-गर्दन हिले ।
करो ब्याह यदि बाल-बाला मिले ॥
न छोड़ो, अरे ! थैलियाँ खोल दो ।
वधू को वरो स्वर्ण में तोल दो ॥

८

दुखी बाल-विधवा बिगोती रहें ।
बिलखती रहें, प्राण खोती रहें ॥
मगर ब्याह उनका रचाना नहीं ।
सुकुल को कलङ्की बनाना नहीं ॥

९

पुजापा चढ़ाओ मियाँ-मीर को ।
दुशाला उढ़ाओ पड़े पीर को ॥
क़बर की करामात को मान दो ।
कुतर्की बकें तो न कुछ ध्यान दो ॥

१०

घरों में लड़ो और बाहर पिटो ।
'क्षमा' को न छोड़ो मरो या मिटो ॥
न बलवान बनना, अकड़ना कभी ।
न तलवार, बरछी पकड़ा कभी ॥

११

लुटें देवियाँ पास जाना नहीं।
झुकें भाड़ में, पर, बचाना नहीं॥
दिखाना न बल की कहीं बानगी।
सुरक्षित रहे मर्द! 'मर्दानगी'॥

१२

रक़म दूसरों की गटकते रहो।
सटासट्ट माला सटकते रहो॥
बनो धर्म के धाम संसार में।
अड़ाओ सदा टाँग उपकार में॥

१३

पकड़ गाय दो-चार चन्दा करो।
न पानी पिलाओ न चारा धरो॥
स्वयम् मौज मारो मज़े में रहो।
भजो भोर गोपाल! 'शिव! शिव!!' कहो॥

१४

न भूलो कभी 'ब्रादरी' को भला।
इसी में छिपी विश्व की है कला॥
किसी पंच का कोप होने न दो।
कभी प्रेम का बीज बोने न दो॥

१५

भरो पाप की पोट डरना नहीं।
कभी पुण्य का काम करना नहीं॥
झुकाओ, हमें थैलियाँ प्रेम से।
रहोगे हमेशा कुशल-क्षेम से॥

पदवी-पतुरिया

१

'गोरे गुरुगण की खातिर में,
खरच करूँगा दाम ।
दमकेगा दुमदार सितारा,
बनकर जुगनू नाम ॥
खिताबों को फटकारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा ॥'

२

'जग में जीवनभर भोगूँगा,
मनमाने सुखभोग ।
परम रङ्क महँगी के मारे,
प्राण तजें लघु लोग ॥
उन्हें तो भी न निहारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा ।'

भाई, भिड्डनमिश्र !

लो, काम बन गया ! बरसों की मिन्नत-ख़ुशामद और मेल-मुरव्वत का नतीजा निकल आया—'अमित काल में कीन्ह मजूरी । आज दीन्ह विधि मब भरपूरी ॥'' जिसके लिए हम आठ पहर चौसठ घड़ी राम-रटना लगाये रहते थे, अन्त में वह 'पदवी पतुरिया' प्राप्त हो ही गई ! बलिहारी है हमारी हिम्मत को, और बधाई है हमारी हम को ! मगर भाई, दुनिया बड़ी बेढंगी है, उससे कृतज्ञता कपूर हुई चली जा रही है । कितने ही लफ़ंगे लनतरानियाँ हाँकते हुए हम से कहते हैं कि—'पदवी-प्रेयसी को वापिस करदो ।' शिव ! शिव !! जिस खिताब-खातून की खातिर, हुज़ूर की खिदमत में हाज़िर होते-होते हड्डियों में हड़कन होने

लगी, उसे वापिस करदें-घर आई लक्ष्मी को फेर दें! ह ह ह ह!!! लोगों को ज़रा शऊर नहीं है।

जिन साहबों की ठोकरों से ठुकराये जाने के लिए लोग लालायित रहते हैं, जिन श्रीमानों के श्रीमुख से ऊल-जलूल सुनना सौभाग्य समझा जाता है, जिन तिल्लीतोड़ों की तिरछी त्यौरी कृपाकटाक्ष के नाम से पुकारी जाती है, उनकी प्रदत्त प्रशस्त पदवियाँ त्याग दी जायें! क्या ख़ूब! लोग नहीं जानते कि ये देवदुर्लभ उपाधियाँ कितनी तेज़ तपश्चर्या और कैसे प्रचुर परिश्रम से प्राप्त होती हैं। अरे भाई! जब अंगरेज़ों की अर्चना और भाइयों की भर्त्सना करते-करते जीभ पर छाले और हलक में फाले पड़ जाते हैं तब कहीं यह ख़ुश क़िस्मती हासिल होती है। डालियाँ लगाते और गालियाँ खाते जब पूरी 'सहिष्णुता' आ जाती है तब यह सुदिन दिखाई देता है। क्या तुम्हें नहीं मालूम कि 'पदवी-पतुरिया' की प्राप्ति से लिये सभा-सोसाइटियों में जाना तो दर-किनार, मैं उनके समाचार पढ़ कर कुल्ला और सुनकर कान साफ़ किया करता हूँ। 'वंदेमातरम्' छूकर, भयङ्कर शीतकाल में भी कई बार हाथ धोने पड़ते हैं। राजनीति के कीटाणु नष्ट करने के लिए, छै-छै बार 'फ़नायल' छिड़कवाई जाती है। असहयोगियों की परछाईं पड़ने से तीन-तीन बार स्नान करना पड़ता है। सार्वजनिक संस्थाओं को चन्दा देना भयङ्कर पाप समझता हूँ। असहयोग आन्दोलन में भाग लेकर, देश से अनुराग रखना बिलकुल विसार दिया है। ईसाइयों को अपनाने, अपने साहबों को रिझाने और हुज़ूरों को मनाने में ही मेरे धन का सदैव सदुपयोग हुआ करता है। मतलब यह है कि जब मैंने साहिबों को सर्वस्व और अपना ध्येय बना लिया तब कहीं पूरी प्रार्थना और ऊँची उपासना के पश्चात् 'पदवी-पतुरिया' के सुन्दर सरूप की झाँकी हुई है।

जो हो, अब हम 'पदवी पतुरिया' के प्राण प्यारे प्राणनाथ हैं। सब जगह हमारा सम्मान होगा। दरबार में सबसे आगे नहीं तो पीछे जरूर कुर्सी मिलेगी। हाँ में हाँ मिलायेंगे और आनन्द पायेंगे। साहबों की सेवा करेंगे और मेवा खायेंगे। देश को दुरदुरायेंगे और सारे झगड़ों से छूट जायेंगे। हम होंगे और हमारा नाम, तुम जानो और तुम्हारा काम! एक बात और की जायगी अर्थात् जहाँ तक मुमकिन होगा, इन हिन्दुस्तानियों से बातें कम करेंगे। ये अजीब जन्तु न मौक़ा देखते हैं न महल। मन में आता है तभी देश सुधार के भौंड़े राग अलापने लगते हैं। एक गवैया रात को बड़ी बेहूदी राग रागनी रेंक रहा था, मेरी नींद उचट गई और उसकी दो एक कड़ी मुझे अब तक याद हैं—

ख़ुशामद ही से आमद है।
बड़ी इसलिए ख़ुशामद है॥

एक दिन राजाजी उठ बोले बैंगन बहुत बुरा है।
मैंने भी कह दिया इसी से बेगुन नाम पड़ा है॥

ख़ुशामद ही से आमद है।
बड़ी इसलिए ख़ुशामद है॥

दूजे दिन हुजूर कह बैठे, बैंगन खूब खरा है।
मैंने भी झट कहा, इसी से उस पै ताज धरा है॥

ख़ुशामद ही से आमद है।
बड़ी इसलिए ख़ुशामद है॥

यदि राजाजी दिवस कहें तो, दिनकर हम दमका दें।
जो वे रात बतावें तो फिर, चन्दा भी चमका दें॥

ख़ुशामद ही से आमद है।
बड़ी इसलिए ख़ुशामद है॥

पशु-पक्षियों की 'पार्लामेंट'

निर्जन जंगल के विशाल मैदान में, आधी रात के आध घण्टे बाद पशु-पक्षियों की एक महती सभा बैठी। जिसमें सब प्रकार के पशु-पक्षियों के प्रतिनिधि शामिल थे। दर्शक रूप से भी बहुत से भ्राता विद्यमान थे। सभापति का आसन श्रीमान् वीरवर केसरीसिंहजी ने सुशोभित किया था। जिस समय सभापति महाशय, मिस्टर चीताराम, पं० बघर्रामल और लाला लकड़बग्घामल के साथ सभामण्डप में पधारे, उस समय प्रतिनिधियों के हर्ष का ठिकाना न रहा! सबने अपनी-अपनी भाषा में उनका एक साथ स्वागत किया। रेंगने, भोंकने, चीखने, चिंघाड़ने, रँभाने, बलबलाने, मिनमिनाने, चहचहाने आदि की सम्मिलित तुमुल-ध्वनि ने युगान्तर उपस्थित कर दिया! सबसे पहले श्रीमती लोमड़ी, श्रीमती बिल्ली और श्रीमती कुक्कुटीदेवी ने स्वागत-गान गाया। फिर मिस्टर भेड़ियाराम खड़े हुए और आपने आध घण्टे में सारा स्वागत-भाषण पढ़ डाला। सभापति महोदय ने उपस्थित प्रतिनिधियों का धन्यवाद देते हुए कहा—

"भाइयो, आज की सभा का उद्देश्य हज़रत इन्सान से असहयोग करना है। इस दुष्ट के द्वारा, हम लोगों को जो घोर कष्ट पहुँचाया जाता है, उससे हम बहुत दुःखी हैं। आत्म रक्षा के उपायों पर विचार न करना कायरता है। मैं अपना भाषण पीछे दूँगा; पहले आप लोग निर्भय और निःसंकोच होकर अपने विचार प्रकट करें। देखिये, सभा में गड़बड़ी न होने पावे। विविध मत-सम्प्रदायों और सूरत-शकलों के प्रतिनिधियों की यह पहली 'पार्लामेंट' है। अतएव एक को दूसरे के भावों का पूरा ध्यान

रखना चाहिये। एक बात ध्यान में और रहे, हम लोग आपस में भले ही मतभेद रक्खें, पर, इन्सान के मुक़ाबिले में सब को एक बन जाना चाहिये। अच्छा, अब श्रीमती गायदेवी अपना भाषण करेंगी।"

गौरवशीला गोमाता

श्रीमती गोमाताजी ने पूंछ हिला कर रँभाते हुए कहा—'भाइयो, कैसे दुःख की बात है, मनुष्य मुझे पकड़ कर अपने घरों में बाँध लेते हैं। मेरे आगे कूड़ा-करकट फेंक कर सारा दूध गटक जाते हैं, मेरी प्रिय सन्तान देखती ही रह जाती है! सब जानते हैं कि माता का दूध उसके बच्चों के लिए होता है, पर, मेरा दूध दूसरों के लिए है। बुड्ढी होने पर मैं 'ब्राह्मण' को 'पुण्य' कर दी जाती हूँ। जहाँ से मेरा सीधा "स्लाटर हाउस" को चालान हो जाता है। मेरे पुत्र शीत-घाम की कुछ भी परवाह न कर, घोर पुरुषार्थ करने के बाद कहीं रूखा-सूखा भूसा पाते हैं। इस घोर अन्याय का नाम मनुष्यों ने "परोपकार" और "गोरक्षा" रख छोड़ा है। बाज़ आई मैं इस 'परोपकार' से। मेरे खाने के लिए परमात्मा ने बहुत दिया है, मैं नहीं चाहती कि परोपकार के 'पोटले' ये इन्सान मेरी जाति पर और अधिक अन्याय करें।

इस वक्तव्य का समर्थन भाषणपटु भैंस और विवेकशीला बकरी ने भी बड़े मर्मस्पर्शी शब्दों में किया और कहा—'दरअसल हमारे साथ घोर अन्याय होता है।'

श्रीगर्दभदेवजी

महाशयो, मेरी कथा न पूछिये, मेरे जीवन से तो मौत ही अच्छी है। रात-दिन काम करना, पीठ पर डण्डे खाना, भूख से घबराना, बस, यही मेरी क़िस्मत में बदा है! इतना घोर पुरुषार्थ

करने पर भी हज़रत इन्सान मुझे बेवकूफ़ ही कहकर पुकारता है, कान पकड़ कर बुलाता और डण्डे मार कर चलाता है। हे सभापति ! मुझे इस घोर दुःख से बचाइये, मैं मर जाऊँगा, मुझे मनुष्य की यह 'परोपकारिता' नहीं चाहिये। सच समझिये, अगर मैं इतना परिश्रम, व्याकरण पढ़ने में करता तो, आज महामहोपाध्याय हो जाता; तप में सहिष्णुता दिखाता तो महात्मा बन जाता। परन्तु सज्जनो, मेरा तो लोक बना न परलोक ! इतना कह कर श्रीगर्दभदेवजी का जी भर आया और आप बीच ही में बैठ गये !

कुँवर कुत्ताकुमारजी

सज्जनो, आप जानते हैं, मैं भाई भेड़िया का चचाज़ाद भाई हूँ। परन्तु इन्सान के कुसंग ने मुझे परममुखापेक्षी और चापलूस बना दिया है। एक टुकड़े की खातिर मुझे उसकी अज़हद् खुशामद करनी पड़ती है। यहाँ तक कि मैं अपने सगोत्री भाइयों से भी प्रेमपूर्वक वार्त्तालाप नहीं करता, सदैव द्वेष दर्शाता रहता हूँ। पर, तो भी मुझे पेट भर रोटी नहीं मिलती ! हमारे कितने ही भाइयों ने, स्वामि-भक्ति के कारण इन्सान के लिए—टुकड़ों और केवल टुकड़ों के लिए—अपने अमूल्य शरीर बलिदान कर दिये, परन्तु इस 'खुदग़रज़ कौम को हमारे हाल पर तनिक भी तरस न आया ! उसने मेरे विरुद्ध नाना प्रकार की किम्बदन्तियाँ गढ़ डालीं !! मेरा घोर अपमान किया !! चाकरी को निन्दापूर्वक 'श्वानवृत्ति' के नाम से पुकारा, और बुरी मौत को 'कुत्ते की मौत' कहा ! क्या इसी का नाम कृतज्ञता है ? क्या सच्ची सेवा का यही प्रशंसनीय फल है कि हम तो इन्सान के लिए प्राण तक देदें, अपने कुनबे को भी त्याग दें, परन्तु हज़रत इन्सान रोटी के टुकड़े तक से हमें महरूम रक्खें, और कभी कुछ खिलादें तो इस

'उपकार' पर फूले न समावें। मैं ऐसे नाशुकरे इन्सान पर लानत का प्रस्ताव पास करने की प्रार्थना करता हूँ।

भाई भेड़ियामल

उदार भाइयो, मुझे अपने चचेरे भाई कुत्ते की कष्ट-कथा सुन कर घोर दुःख हुआ। वास्तव में, अपने जातीय गौरव को भूल कर, भाइयों का साथ न देने वालों की, ऐसी ही दुर्गति होती है। निस्सन्देह कुत्ता हमारा भाई है, पर वह टुकड़ों की ख़ातिर दूसरी क़ौम का ग़ुलाम बन गया!

[नोट—यहाँ माननीय सभापतिजी ने भाई भेड़ियामल को यह कह कर रोक दिया—'तुम्हें अपनी शिकायतें पेश करनी चाहिए थी, दूसरों के सम्बन्ध में, आक्षेप पूर्वक कुछ कहने या उनकी समालोचना करने का अधिकार तुम्हें नहीं दिया गया।' यह सुन कर भाई भेड़ियामल उदास होकर बैठ गये। फिर हज़रत हाथीख़ाँ को बोलने की आज्ञा मिली।]

हज़रत हाथीख़ाँ

सज्जनो, हमने भी कम कारनामे नहीं दिखाये, पर अब नयी रौशनी वाले इन्सान द्वारा हमारा जो निरादर है, उसे हम कह नहीं सकते। भला कुछ ठिकाना है! क्या इन्सान को अक़्ल इसलिए मिली है कि वह 'अंकुश' के रूप में, हमारे भारी भाल पर आक्रमण करता रहे। इतने बड़े हम गजराजों के लिए यह शर्म की बात है! इस लोकतन्त्र-शासन के युग में इस प्रकार अपमानित होना कोई पसन्द न करेगा। शिकार के समय हम अपनी छाती अड़ा देते हैं, पर, अपने ऊपर बैठे हुए इन्सान तक कोई चोट नहीं आने देते। गहरी नदी में ख़ुद घुँस जाते हैं, पर अपने शासक सवार पर, छींटे भी नहीं पड़ने देते। ज़रा पुराना इति-

हास उठा कर तो पढ़ो, हमारे कैसे-कैसे कारनामे हैं। आज कल के राजाओं ने हमें जनाना बना दिया! हम भी देशी राजाओं की तरह, बस, कभी-कभी जुलूसों की शोभा बढ़ाने वाले दिखावटी समझे जाने लगे! हमारा सब शौर्य नष्ट किया जा रहा है। इतना बड़ा महायुद्ध हो गया पर हमारा उसमें नाम तक नहीं! इससे अधिक हमारा अपमान और क्या होगा? अगर मेरा बस चले तो, मैं इस 'अक़्ल. के पुतले 'इन्सान की सारी समझ ठीक कर दूँ। भाइयो, साहस करो, अगर आप सब लोग लीद भी करदें तब भी उससे सारा मनुष्य-मण्डल दब सकता है। निरंकुश होते हुए भी आप एक अंकुश के इशारे नाच रहे हैं, यह दुःख की बात है।

८० घोड़ासिंह

भाइयो और भाभियो, हमारी जाति ने इन्सान का अपूर्व हित किया है। जिस समय न 'मोटर' थी न 'साइकिल' और न हवाई जहाज़ थे, उस समय हम ही इन्सान को सर्वत्र घुमाते फिरते थे। हमारी क़दर भी बहुत होती थी, परन्तु जब से ये रांड 'पोंपों' चली हैं, तब से हमारी बहुत बेक़दरी हो गई है। जिन अस्तबलों में पहले हम हर्ष से हिनहिनाया करते थे, आज उनमें 'पेट्रोलियम' की दुर्गन्ध आती है। ज्यों ही मनुष्य 'मोटरकार' ख़रीदने योग्य होता है त्योंही वह उसे ख़रीद कर हमें ज़वाब दे देता है! यह संक्रामक रोग बराबर बढ़ रहा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि थोड़े ही दिनों में हमारी कोई बात भी न पूछेगा, हम लोग 'किराये के टट्टू' से अधिक अपनी पोज़ीशन न रख सकेंगे। आप जानते हैं, 'टट्टू' नामधारी हमारे लघु भ्राताओं की कैसी दुर्गति है? उनसे बोझ ढुलवाया जाता है, कूड़ा उठवाया जाता है, पाखाना फिकवाया जाता है, इक्कों में जोत-जोत कर उनके कमर-कन्धों पर ज़ख़्म कर दिये जाते हैं। भले ही मक्खियाँ भिनभिनाती रहें, पर, हज़रत इन्सान को इससे क्या? क्या यह हमारे उपकारों के प्रति-

घोर कृतघ्नता नहीं है ? क्या उदारचेता वीर-शिरोमणि 'चेतक' के कुल की यह दुर्दशा होनी चाहिये ? भाइयो, भावी आपत्ति का अभीसे इलाज करो।

चौधरी उष्ट्रसिंह

भाइयो, क्या कहें इन्सान का बोझ ढोते-ढोते मरे जाते हैं; गाड़ियाँ खींचते-खींचते अक़्ल हैरान है। जिस मरुभूमि में, हमारे प्रतिनिधि भाइयों में से कोई घूमना पसन्द न करेगा, उसमें हमें भभकती भूभल पर चलना पड़ता है। अगर वहाँ हम न हों तो, इन्सान की सारी अक़्ल ठिकाने आ जाय। परन्तु तो भी हमारे चारे का कोई प्रबन्ध नहीं ! स्वयम् पत्ती तोड़ना और पेट भरना। काम तो लिया जाय पर खाना न दिया जाय, यह कहाँ का इन्साफ़ है ? हमें मनुष्य की दयालुता नहीं चाहिये, हम तो उसके आश्रय के बिना ही अच्छे हैं।

इसके बाद सभापति श्री केसरीसिंहजी ने कहा—'अब दूसरे वर्ग के प्रतिनिधि बोलेंगे। पहिले पक्षियों की 'स्पीच' होगी फिर बिल-वासियों को अवसर दिया जायगा।'

मि० तोताराम

सज्जनो, इन्सान कहता है कि, मैं प्यार का पुतला हूँ, गुणों का ग्राहक हूँ। परन्तु यह सब उसका ढोंग है। आप जानते हैं, मेरी जाति के लोग बातून ज्यादा होते हैं, खूब मीठी-मीठी बातें बनाते हैं। बस, इसीलिए हज़रत इन्सान ने अपने कन-रसियापन के कारण, 'अहिंसा' के नाम पर हमें पिंजड़े में बन्द करना शुरू कर दिया ! देखिये, मेरे भाइयों का पिंजरबद्ध बन कर सारा जीवन नष्ट हो गया ! वे नहीं जानते कि स्वतन्त्र वायुमंडल में साँस लेना कैसा होता है ? हमारा स्वातन्त्र्य और स्वास्थ्य नष्ट

करके मनुष्य कहता है—"मैंने पक्षियों की रक्षा की है! उनको दाना खिलाया और बचाया है!! मैं परोपकार का पुँज और अहिंसा का अवतार हूँ!!!" परन्तु भाइयो, लानत है इस "परोपकार" पर जो हमें नष्ट भ्रष्ट करके किया जाता है? परमात्मा ज़मीन पर रेंगने वाली चींटी को भी खाना देता है तो क्या हम व्योम-विहारी लोग भूखों मर जायंगे। हम खुदग़रज़ इन्सान की ऐसी बातों से बहुत तंग हैं।

श्रीमती मैना देवीजी ने इस व्याख्यान का समर्थन किया। और भी कई पक्षियों ने बोलने को पङ्ख फड़फड़ाये परन्तु सभापतिजी ने उन्हें यह कह कर रोक दिया कि 'समय थोड़ा है, सुबह होने वाली है, अतः अब बिल-वासी लोग कुछ कहें।'

पं० चुहियाचरणजी

सज्जनो, मुझे अपनी जाति की दुर्दशा देखकर बड़ा दुःख है। आप जानते हैं कि प्रथम तो हमारे छोटे से शरीर पर पृथुलतुन्द श्री गणेशजी को सवार कर देवताओं ने घोर अन्याय किया है। ख़ैर, उनकी बात भी जाने दीजिये। ये अहिंसाभिमानी मनुष्य हमारे नाश का नित नया उपाय सोचते रहते हैं। कभी पिंजड़ों में पकड़ कर हमारा नाश करते हैं और कभी हमारे घरों में ज़हर की गोलियाँ पटकते हैं, जिससे हम मर जायँ। "अशरफ़-उल मख़लूक़ात" इन्सान की इस हिमाकत से, अब तक हमारे हज़ारों लाखों भाई, अपनी ऐहिक लीला समाप्त कर, परलोग वासी बन चुके हैं! ये भलेमानस यह नहीं समझते कि 'प्लेग' आने की सब से प्रथम सूचना हम अपने शरीरों को बलि-वेदी पर चढ़ा कर देते हैं। हमारी इस सूचना से जो लोग प्लेग-प्रभावित स्थान को छोड़ देते हैं, वे बच जाते हैं। इस उपकार का बदला हमें मिलता है—'सर्वनाश'! बलिहारी इस इन्सानियत की! और देखिये, आज

चारों ओर 'सुधार-सुधार' और 'उन्नति उन्नति' का ढोल पिट रहा है, परन्तु कोई यह नहीं सोचता कि इन तरक्कियों के तरानों का 'श्रीगणेश' कहाँ से हुआ। भाइयो, बताइये यदि हम शिवरात्रि को, टंकारा के एक शिवालय की शिवमूर्ति पर, चावल चबा कर, मूलशंकर को उपदेश न देते तो, ऋषि दयानन्द कहाँ से आते, और भारतोद्धार कौन करता ? इन सब उपकारों का बदला इन्सान की ओर से मिलता है—'सर्वनाश' ? कैसे दुःख और कितने परिताप की बात है।

वाचाल बन्दर और बीबी बिल्ली

दोनों ने एक स्वर से कहा कि हमारी राय में, हमारे पूर्व वक्ताओं ने हज़रत इन्सान पर झूठे इलज़ाम लगाये हैं। हमें देखिये, हम स्वतन्त्रता पूर्वक चरते-विचरते हैं, और मनुष्य से खूब छीन-झपट कर खाते हैं, परन्तु हमारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। बिल्ली ने कहा—'मैं तो घरों के कौने-कौने में घुस जाती हूँ और खब मौज उड़ाती हूँ।' बन्दर बोला—'हनुमान बन कर गुड़धानी खाना और गुर्राना हमारा काम है। बात वास्तव में यह है कि इन्सान से बाज़ी मारने के लिये चातुर्य की ज़रूरत है, जो जितना ही सीधा-सादा होता है, उतना ही पिटता है। महाशयो, हमें इन्सान की कोई शिकायत नहीं।

सभापति का भाषण—

इसके बाद सभापति श्रीकेसरीसिंह का अन्तिम भाषण हुआ। आपने कहा—

'भाइयो, मैंने सब व्याख्यान ध्यान पूर्वक सुने। वास्तव में इस 'अशरफ़-उल-मखलूक़ात' कहे जाने वाले इन्सान ने हम लोगों की नाक में दम कर रक्खा है। आप लोगों की कष्ट-कथा सुन कर,

मेरे दुःख का ठिकाना नहीं रहा ! आप यह न समझें कि मेरी जाति के लोग पशुपति परिवार के होने से सुखी हैं। हमारी जाति पर भी इन्सान का घोर अन्याय होता है। हमें तो वह देख ही नहीं सकता, ख़बर लगते ही मारे गोलियों के हमें हलाक कर दिया जाता है। हमें कठहरों में बन्द करके हमारी स्वाधीनता छीन ली जाती है। किसी समय हम सारे देश में आनन्द से चरते-विचरते थे, पर, अब तो बेदर्ज्ञों की तरह हमारे परिवार के लोग भी केवल कहीं-कहीं दिखाई देते हैं। इन्सान की जितनी शत्रुता हमारे वंश से है, उतनी किसी से नहीं। अभी आपने हज़रत बन्दर और बीबी बिल्ली के व्याख्यान सुने; उन्होंने इन्सान की हिमायत की है, पर इन भूले भाई और भटकी बहिन को यह नहीं ख़बर कि उचक्कापन करना या छीना-झपटी से काम लेना पशु-परिवार की वंशपरम्परा के प्रतिकूल है। इसके लिये मनुष्यों के 'राष्ट्र' नामधारी समुदाय ही बहुत हैं। क्या हज़रत बन्दर कलन्दरों द्वारा लकड़ी के बल नहीं नचाये जाते ? क्या उन्हें पेट दिखा-दिखा कर टुकड़े नहीं माँगने पड़ते ? इस घोर घृणित व्यवहार पर भी वह इन्सान का पक्ष लेते हैं, शर्म की बात है ! (चारों ओर से शर्म ! शर्म !! शर्म !!!)

'बीबी बिल्ली का लुक-छिप कर इन्सान के जूठे बर्तनों को चाट लेना, या दाव-घात से कुछ खा-पी आना कोई गौरव की बात नहीं है। इसके लिए इन्हें अभिमान न करना चाहिए। अच्छा, मैंने अब ख़ूब सोच लिया, और सब के उद्धार की एक बात सूझी है। महामहोपाध्याय श्रीगजराजजी और हम जैसे शक्तिसम्पन्न वीरवरों पर, क़ाबू करना, हमारे अन्य बलहीन भाइयों को सताना, हमारे विनाश के लिए गोला-बारूद, तलवार-बन्दूक आदि बनाना ऐसी बातें हैं जो अल्पशक्ति मनुष्य की बुद्धि के कारण ही हो रही हैं। बुद्धि न हो तो यह इन्सान साधारण

कीट-पतङ्गों से भी घटिया दरजे का ब[illegible] जानवरों की जड़ मनुष्य की बुद्धि है, इसलिए मेरी सम्मति में इस महासभा से, यह प्रस्ताव पास करके, 'ख़ुदावन्द ताला' के पास भेजना चाहिये कि वह इन्सान से अक्ल छीन कर, अपनी प्यारी प्रजा में सुख शान्ति स्थापित करे, और हम लोगों पर अन्याय न होने दे। उपस्थित समुदाय ने गगनभेदी गर्जना पूर्वक सभापति के प्रस्ताव का समर्थन किया और वह सर्वसम्मति से पास हो गया। सभा बरख़ास्त हुई और सब लोग अपने-अपने घरों को सिधारे।

भारतीय मुछमुण्ड-मण्डल

होलीपुरा के 'हुल्लड़-पार्क' में, अखिल भारतीय मुछमुण्ड-मण्डल" का महाधिवेशन, खूब धूमधाम से मनाया गया। डेढ़ लाख निमुच्छे प्रतिनिधि सभामण्डप में मौजूद थे। दर्शकों के रूप में, स्त्रियाँ, संन्यासी तथा बालक भी अधिक संख्या में उपस्थित थे। स्वागत भाषण के पश्चात् सभा के पति "हिज़ हैवीनेस" मिस्टर निमुच्छानन्द महाशय का प्रभावशाली व्याख्यान हुआ, जिसकी अविकल रिपोर्ट नीचे दी जाती है। स्वीकृत प्रस्तावों की सूची फिर छपेगी, पाठकों को उत्सुकता पूर्वक उसकी प्रतीक्षा करनी चाहिये।

सभापति का भाषण—

निमुच्छे महाशयो, आप लोगों ने आज मुझे इस "आल-इण्डिया मुछमुण्ड-महासभा" का प्रधानत्व प्रदान कर, अवश्य ही अपना कर्त्तव्य-पालन किया है। निस्सन्देह, मैं सब दृष्टियों से इस 'मुच्छहीन-मजलिस' का मीर होने लायक़ हूँ। मुझ से अधिक उपयुक्त व्यक्ति, इस काम के लिये आपको और कोई न मिल सकता था। इस कर्त्तव्य-पालन और खोज के लिये मैं आपको हार्दिक बधाई देता हूँ। परन्तु किसी प्रकार के धन्यवाद की आवश्यकता नहीं समझता। आज मुझे, इस बड़ी सभा में, मुछमुण्डों को अधिक संख्या में देख कर बड़ा हर्ष होता है।

आप जानते ही हैं, मेरी ६६ वर्ष की आयु हो गयी, परन्तु आज तक मनहूस मूछों को मेरे खूबसूरत चेहरे पर, अपना क़ब्ज़ा करने की जुरअत नहीं हुई। मैं जानता ही नहीं कि मूछें क्या

होती हैं, और उनका कुल-संहार करने के लिए छुरा कैसे चलाया जाता है? जैसा सुन्दर सपाट चहरा आज से ५० वर्ष पूर्व था वैसा ही अब भी है। दाँत उखड़ गये हैं तो क्या है, बदसूरती तो नहीं आई; खाल सिकुड़ गई सही परन्तु उस पर बाल का अधिकार तो नहीं हुआ। ऐसी दशा में मुझे मुछमुण्डता का "जन्म-सिद्ध अधिकार" (Birth right) प्राप्त है, और मैं ही अपने को इस सभा का सभापति होने का सब से अधिक अधिकारी पाता हूँ।

आप लोगों ने भी मूँछों का बहिष्कार कर बड़ा काम किया है। सन्तोष की बात है कि आप में से कुछ सज्जन तो रोज और कुछ दिन में दो-दो बार, छुरे की पैनी धार से इन दुष्टाओं का दर्पदलन करते रहते हैं। मेरा आप सब मुछमुण्ड महाशयों से सविनय अनुरोध है कि जहाँ तक हो, और जब तक पेश चले मूछों के झाड़झंकार को मुखमण्डल पर न उगने दो। इनकी जड़ों पर उसी प्रकार कुठाराघात करो, जिस तरह चाणक्य ने कुश-मूल नष्ट करने के लिये किया था।

भाइयो यह ठगिनी प्रकृति भी बड़ी विचित्र है, भला उसे इन मूछों के कूड़े-करकट को, इस चमकते चहरे पर जमा करने की क्या जरूरत थी। इससे फायदा तो कुछ है ही नहीं; हाँ नुकसान जरूर है। जिस समय से इन कर्कशाओं के काँटे, सुन्दर अधरों पर अंकुरित होते हैं, उसी समय से सुन्दरतापूर्ण लालिमा पर कालिमा पुतने लगती है। ज्यों-ज्यों मूछों का दर्प बढ़ता है, त्यों ही त्यों, उसका दलन करने के लिए, करों को कष्ट करना पड़ता है। जब तोड़ते-मरोड़ते, उखाड़ते-पछाड़ते, ऐंठते-अमेंठते हुए भी आप लोग मूछों को क़ाबू में नहीं कर सके तभी तो उन्हें उस्तरे के घाट उतारने की सूझी। मगर, वाहरी निर्लज्जता! यह कम्बख्त इतनी बेशर्म हैं कि, रोज़ मुँह मसले जाने पर भी सिर उठाये

बिना नहीं रहतीं ! नित्य छुरा चलने पर भी अपनी शरारत से बाज़ नहीं आतीं !!

मुछक्कड़ लोग कहते हैं कि बिना मूछों के चहरा बदसूरत हो जाता है, परन्तु यह उनकी कपोल कल्पना मात्र है। आप रात-दिन स्त्रियों, बालकों और संन्यासियों को देखते हैं, मैं तो समझता हूँ, इनकी सुन्दरता मूछों के न होने के कारण और बढ़ जाती है। आप लोग स्वयम् अपने सपाट मुंह पर हाथ फेरिये, शक्लों को शीशे में देखिये, कितनी कोमलता और सुन्दरता मालूम होगी। अहा ! टेढ़ी-तिरछी, कपटी-चपटी, अकड़ती-सिकुड़ती, गुर्राती-हाहाखाती मूछों को मिटा कर, आपने मिथ्या भेद-भाव दूर कर दिया और सचमुच अपने को नवयुवक बना लिया है। इस समय आप लोगों के निमुच्छे मुखमण्डलों से अपूर्व कान्ति टपक रही है।

स्वास्थ्य की दृष्टि से तो मूछों का विधान बहुत ही बुरा है। इस बात का कटु अनुभव मुछक्कड़ों को ज़ुक़ाम के वक्त या दूध पीते अथवा रायता सपोटते समय होता है। सारी मूछें सन कर बरसाती छप्पर की तरह, टपकने लगती है। जो लोग 'सिगरेट' पीते हैं, उन्हें तो इनकी बड़ी ही हिफ़ाज़त करनी पड़ती है, कहीं इन तक आँच न पहुँच जाय। कभी-कभी तो ये कम्बख़्त ख़ुद चुरट की चिता में पड़ कर ख़ामख़्वाह 'सती' हो जाती है। ऐसी दशा में, महाशयो, मैं नहीं समझता कि मूछों के पक्ष में लोग क्यों अपनी सम्मति दिया करते हैं।

जिस समय वृद्धावस्था पदार्पण करती है, उस समय ओठों पर 'तिल-चावरी' मूछें उसी प्रकार दिखाई देती हैं, जिस प्रकार किसी मनहूस मैदान में खड़ी, गोरे-कालों की पिटी हुई पल्टन ! ज्यों ज्यों स्याही पर सफ़ेदी पुतती जाती है, त्यों ही त्यों चहरा, राजपूताने की मरुभूमि सा बनता जाता है। कैसाही सुन्दर, सुडौल,

सजीला मुख-मण्डल क्यों न हो, भूरी मूछें सारा मज़ा मिट्टी में मिला देती हैं। कोई 'बाबा' कहता है कोई 'नाना', वृद्ध कहता है और कोई 'बुजुर्ग'। कालौंच के किले पर सफेदी का झण्डा क्या फहराता है, सारा नकशा ही बदल जाता है! तभी तो तंग आकर महाकवि केशवदास ने कहा था—

केशव 'मूँछन' अस करी, जस अरि हूँ न कराहिं।
चन्द्रवदन मृगलोचनी, 'बाबा' कहि-कहि जाहिं॥

सो भाइयो, इन 'बाबा' बनाने वाली, वैरियों से भी बढ़ कर मूछों से बचो, इन सब आपत्तियों से बचने की एक मात्र अमोघ औषधि 'मुछमुण्डता' है—और कुछ नहीं।

निमूछ्छ महाशयो, आपको मालूम है कि, भारत के भूत वायसराय लार्ड कर्जन ने मूछों पर छुरा चला कर किस प्रकार अपने नाम के पीछे 'मुछमुण्ड फैशन' (कर्जन फैशन) चलाया? सुनिये इसकी कथा बड़ी विचित्र है। एक दिन मुछक्कड़ कर्जन अपनी नवपरणीता प्रियतमा के कोमल कपोलों पर प्रसन्नतापूर्वक प्रेम-पीयूष प्रवाहित करने लगे, इतने ही में उनकी पत्नी ने, प्रेमपगी वाणी में झिड़क कर कहा—("Are you kissing me or brushing me ?") "प्राणनाथ! आप प्यार कर रहे हैं, या अपनी मूछों के कड़े बालों की कुर्ची से मेरे चहरे पर खुरहरा करते हैं?" बस प्राणप्यारी के यह युक्तियुक्त शब्द सुन कर कर्जन साहब ने अपनी मूछों को उस्तरे की नज़र कर दिया और फिर आजन्म उनका आदर न किया! आज आप लोगों को उसी 'मुछमुण्ड महाशय' के अनुयायी होने का गौरव प्राप्त है। परमात्मा 'मुछमुण्डमत' के आद्याचार्य लार्ड कर्जन, और उनकी प्रियतमा पत्नी की आत्मा को चिर शान्ति प्रदान करे, जिन्होंने हमारे ऊपर ऐसा बड़ा उपकार किया।

मुछमुण्ड महाशयो, यह कोई विनोद नहीं है, इसे कपोल-कल्पना न समझिये। अगर आप प्राचीन और नवीन इतिहास के पृष्ठ पलट कर देखेंगे तो, आपको सर्वत्र 'मुछमुण्डता' की ही महिमा दिखाई देगी। संसार के उद्धार कर्त्ता मर्यादापुरुषोत्तम राम सदैव मुछमुण्ड रहे. आनन्दकन्द ब्रजचन्द श्रीकृष्णचन्द ने कभी मूछों से सहयोग नहीं किया। मैं चेलेंज देकर पूछता हूँ कि क्या संसार में कोई राम या कृष्ण की ऐसी एक भी तस्वीर अथवा मूर्ति दिखा सकता है, जिससे उनकी 'निमुछमुण्डता' सिद्ध होती हो। सारे अजायबघर (म्यूज़ियम) देख डालिये, 'सारनाथ' का सार निकल लाइये, पर अहिंसा के प्रबल समर्थक महात्मा बुद्ध की प्रतिमा के मुँह पर कहीं पूछों के कूड़े करकट का ढेर दिखायी न देगा। परम दार्शनिक शंकराचार्य के चहरे को देखिये, मूछों का चिन्ह तक न मिलेगा। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का चहरा साफ़ नज़र आवेगा। आधुनिक युग के सबसे बड़े सुधारक ऋषि दया-नन्द ने भी इस झाड़-झङ्कार को आदर नहीं दिया। अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द के सुन्दर-सपाट मुख मण्डल की पवित्र स्मृति कैसे भुलाई जा सकती है।

धार्मिक संसार ही नहीं, राजनैतिक जगत् का भी मुलाहिज़ा फ़रमाइये। राष्ट्रीय महासभा के मंच पर, राष्ट्रपति की स्थिति से जिन्होंने भाषण दिये हैं, उन में अधिकांश हमारे मत के अनुयायी निमुच्छ महाशय ही थे, और हैं। दूर क्यों जाते हो, वर्त्तमान काल में आँखें पसार कर देखिये, सी० आर० दास, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, श्रीनिवास आयंगर, सी० वाई० चिन्तामणि, भाई परमानन्द, श्रीनिवास शास्त्री. विपिनचन्द्र पाल इत्यादि–सैकड़ों नेता 'मुछमुण्ड-दल' के ही अनुयायी हैं। जो सज्जन अभी इस समुदाय के सदस्य नहीं बने वह बनते जा रहे हैं। विलायत में जहाँ देखो वहाँ निमुच्छापन ही दिखाई देता है।

राजनैतिक और धार्मिक क्षेत्र से बढ़ कर, यह निमुच्छता साहित्य क्षेत्र में भी विहार करने लगी है। आप गौर से देखें, बदरीनाथ भट्ट, लक्ष्मीधर वाजपेयी, वियोगी हरि, शिवप्रसाद गुप्त, कृष्ण-कान्त मालवीय, राधामोहन गोकुलजी इत्यादि—साहित्य-सेवियों के मुँह से मूछें.............. के सींग की तरह उड़ गया, और उड़ती जा रही हैं। हर्ष की बात है कि अब राजाओं में भी यह सुप्रथा प्रचलित हो चली है, और सब से प्रथम, श्रीमान् बड़ौदा नरेश और राजा रामपालसिंह साहब ने इस ओर अपना पवित्र पग बढ़ाया है।

मुच्छहीन महाशयो, मैंने यह दो-चार उदाहरण दिये हैं, बहुत मिसालों से व्याख्यान बढ़ जायगा, समय थोड़ा रह गया है। 'स्थायी पुलाक न्यायेन' इतने ही से आप लोग सब कुछ समझ लीजिए। कोई भी अच्छी प्रथा देश में कठिनाई से प्रचार पाती है। 'मुछमुण्डता' का विस्तार भी धीरे-धीरे ही होगा, परन्तु होगा अवश्य यह हमारी ध्रुव धारणा है। विना मुछमुण्डता के देशोद्धार हो ही नहीं सकता। सबको इस पथ का पथिक बनना ही पड़ेगा। मुझे भय है कि कहीं कट्टर हिन्दू यह न कह बैठें कि इसने हँसी-ख़ुशी के अवसर पर कैसा निमुच्छपन का बकवाद कर डाला! मूछें तो शोक में मुड़ाई जाती हैं। हाँ, इन लोगों को समझाने के उद्देश्य से मैं 'भरमी' कवि के शब्दों में कहूँगा—

जिहि मुच्छन धरि हाथ,
कछू जग सुयश न लीनो;
जिहि मुच्छन धरि हाथ,
कछू जग काज न कीनो॥
जिहि मुच्छन धरि हाथ,
कछू पर पीर न जानी;

जिहि मुच्छन धरि हाथ,
दीन लखि दया न आनी ॥
मुच्छ नाहि वे पुच्छ हैं,
कवि 'भरमी' उर आनिये ॥
नहिं वचन-लाज नहि दान-गति,
तिहि मुख मुच्छ न जानिये ॥

बोलो, कमाया कुछ जग में 'सुयश'? किया कोई संसार का 'काज'? मिटाई दुखिया माता की 'पीर'? की दीनों पर 'दया'। पाले 'वचन' और दिया 'दान'? नहीं—तो फिर? फिर क्या, इन 'पूँछ रूपी मूछों' को मुड़ाओ और पशुता का कलंक मिटाओ! इस दृष्टि से भी मूछों की कोई आवश्यकता नहीं है!! शोक?—शोक की अच्छी कही, जिसका दस-बीस रुपये का माल कोई छीन लेता है, उसके शोक का ठिकाना नहीं रहता। परन्तु जहाँ सर्वस्व छिन गया हो—स्वाधीनता तक नष्ट करदी गई हो, करोड़ों लाल चिथड़ों और टुकड़ों के लिए तरस रहे हों, लाखों विधवाएँ बिलबिला रही हों, और अनाथों का ठिकाना न हो, अगणित भाई अकाल मृत्यु के मुँह में पड़ रहे हों वहाँ शोक नहीं तो क्या हर्ष होगा? पारिवारिक शोक में दो-चार कुटुम्बी मूछें मुड़ाते हैं; तो देश के शोक में सारे देशवासियों को 'मुछमुण्ड' बनना चाहिए। यह मेरी प्रार्थना है।

बस, अब मैं अपने अभिभाषण को सदाशा पूर्वक समाप्त करता हूँ। समाप्त करने के पूर्व एक बात बता देना चाहता हूँ। मेरे पास 'मुछमुण्ड-सभा' के कुछ अनुपस्थित सदस्यों के तार आये हैं, जिन्होंने इस महासभा के कार्य की सफलता चाही है, और साथ ही लिखा है कि 'मुछमुण्ड' नाम बहुत बुरा है, कर्णकटु है। उसे बदल कर महासभा का, कोई शुद्ध-संस्कृत नाम रख दिया

जाय। इन तार भेजने वालों में—मठों के जगद्गुरु, वृन्दावन तथा गोकुल के गोस्वामी, अयोध्या के रामफटाका आदि हैं। मेरी सम्मति में 'मुच्छमुण्ड' के स्थान में 'सखी-सम्प्रदाय' नाम ठीक रहेगा। यह नाम मुझे तो उपयुक्त जँचता है, आप लोग अपनी सम्मति दें। उपस्थित सदस्यों ने 'ठीक-ठीक', 'स्वीकार' स्वीकार' कह कर 'सखी-सम्प्रदाय' का समर्थन किया और इस प्रकार मिस्टर निमुच्छानन्द का प्रभावशाली भाषण समाप्त हुआ। बोलो 'सखी-सम्प्रदाय' की जय!

बिरादरी-विभ्राट्

प्रथम अंक

(पहला दृश्य

(स्थान—अन्धेर-नगरी)

सुधारक—गाता है—

गिरों को गले लगावेंगे।
अछूतों को अपनावेंगे॥

कर-कर भेदभाव की बातें, हाय! हुए हम दूर।
भाई में भाई के लिए, बैर भरा भरपूर॥

उसे हम जल्द मिटावेंगे।
अछूतों को अपनावेंगे॥

दुर-दुर छुआछूत के कारण प्यारा भारत देश।
रंक हो गया, भोग रहा है, हा! हा!! कष्ट कलेश॥

सुनो, हम सुखी बनावेंगे।
अछूतों को अपनावेंगे॥

जाति-पाति के जटिल जाल ने फांस लिये हम लोग।
भूल गये भ्रम सागर में पड़, करने शुभ उद्योग॥

न अब अनुदार कहावेंगे।
अछूतों को अपनावेंगे॥

तोड़ गुरूडम की गाढ़िया को फोड़ घृणा-घट-खण्ड।
छोड़ छद्मता छलियापन की, दूर करें पाखण्ड॥

प्रेम-पीयूष बहावेंगे।
अछूतों को अपनावेंगे॥

हे भगवन्! जो आर्यजाति का करदो अभ्युत्थान।
तो, फिर हमें मिले भूतल पर पहला सा सम्मान॥

विजय का शंख बजावेंगे।
अछूतों को अपनावेंगे॥

दम्भदेव—अरे, यह कौन चीख़ रहा है, कलियुग में तरक़्क़ी का तराना किसे सूझा है, द्वारपाल! जल्द इस रेंकुए को पकड़ कर लाओ।

बकता है बार-बार यह कैसा गँवार है।
मक्कार 'धर्म-नाश' को समझा सुधार है॥
लाओ इसे घसीट अभी ठीक करूँ मैं।
लम्पट, लवार, लण्ठ का अज्ञान हरूँ मैं॥

द्वारपाल—"महाराज! जो आज्ञा" (कहकर जाता है)

दम्भदेव—(स्वागत) आने दो इस अछूतों को उठाने और गिरों का गले लगाने वाले को! सारी अक्ल ठिकाने कर दी जायगी! सब बातें बनाना भूल जायगा!!

द्वारपाल—महाराज! वह गाने वाला आगया है।

दम्भदेव—फ़ौरन उस रेंकुए को हमारे हजूर में हाज़िर करो।

द्वारपाल—जो हुक्म—

सुधारक—(दम्भदेव से) 'वन्देमातरम्' महोदय! कहिये, कैसे याद फ़रमाया ?

दम्भदेव—तुम गुस्ताख़ आदमी! अभी क्या बक रहे थे। जानते नहीं हो कि मैं दम्भदेव हूँ—मेरे इधर उधर इस तरह का बेहूदा बकवाद करना 'गुनाहेअज़ीम' समझा जाता

है। मुआफ़ी माँगो और आगे से ऐसी अण्डबण्ड बातें न बकने का अहद करो।

सुधारक—नहीं साहब, यह रोशनी का ज़माना है, हमें जो कुछ कहना है, ज़रूर कहेंगे। सचाई से आप किसी को नहीं रोक सकते। माना कि आप समर्थ और स्वामी हैं, पर, हम स्वतन्त्र मत प्रकट करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं।

दम्भदेव—अरे, कोई है जो इस मुँहज़ोर का मुँह सीधा करे। (ज़ोर से चिल्लाता है)—"उद्दण्डसिंह!"

उद्दण्डसिंह—महाराज! क्या आज्ञा है?

दम्भदेव—(सुधारक की ओर इशारा करके) इस गुस्ताख़ को पकड़ कर ले जाओ, और हवालात में बन्द कर दो। बड़ा नामाकूल है, भङ्गी और चमारों को उठाना चाहता है—उनके गले लगाने की बात बकता है।

उद्दण्डसिंह—बहुत अच्छा, सरकार! (धक्का देकर सुधारक की गरदन पकड़ता है।)

सुधारक—याद रक्खो, हम कच्चे खिलाड़ी नहीं हैं जो तुम्हारी धमकियों से अपना उसूल छोड़ दें—'कुम्हड़बतियाँ' नहीं हैं जो 'तर्जनी' देखकर मुरझा जायें। अरे, यह शरीर बड़ी-बड़ी आफ़तों का इस्तक़बाल कर चुका है: सैकड़ों सङ्कटों का केन्द्र बन चुका है, पर, उफ़ नहीं की—

'सिदाक़त के लिये गर जान जाती हो तो जाने दें।
मुसीबत पर मुसीबत सर पै आनी हों तो आने दें॥'

दम्भदेव—ले जाओ! ले जाओ!! इस सचाई के सिरकटे को,

क़ैदख़ाने में, ले जाओ !!! वहाँ पड़ा-पड़ा सड़ता रहेगा, या इसकी अक़्ल ठिकाने आ जायगी।

सुधारक—दम्भदेव ! आप क्या कहते हैं ? भला इन गीदड़-भभकियों से भी कुछ हो सकता है ? देखो—"यह वह नशा नहीं जिसे तुरशी उतार दे।"

दम्भदेव—अरे उद्दण्ड ! इसे कालकोठरी में क्यों नहीं ले जाता ?

उद्दण्ड—अन्नदाता ! दीवान दुर्जनमल आ रहे है, अभी जाता हूँ।

(दीवानजी का प्रवेश)

दुर्जनमल—(दम्भदेव को प्रणाम करके) इस बँधुए से क्या गुस्ताख़ी बन गई, महाराज ! जो श्रीमान् का मुख-मंडल कुछ क्रुद्ध सा दिखाई देता है।

दम्भदेव—यह गँवार सुधारकों का सरदार बनता है, चमारों और भंगियों को गले लगाने की बात बकता है।

दुर्जनमल—शिव ! शिव !! बड़ा बज्जात है, महाराज !

दम्भदेव—और फिर शोख़ी इस क़दर कि अपनी ग़लती मानकर माफ़ी तक नहीं माँगता, बल्कि अपनी नाजायज़ हर-क़त पर ज़िद करता है।

दुर्जनमल—हरे कृष्ण ! वासुदेव !! इतनी ढिठाई और ऐसी निर्लज्जता ! तो क्या इसे कालकोठरी में भेज रहे हैं, हुज़ूर।

दम्भदेव—हाँ—

दुर्जनमल—अन्नदाता की जो आज्ञा हो, है तो वही ठीक, पर, मेरी सम्मति में, तो, इसका जेल जाना ठीक न रहेगा। वहाँ यह खायगा और गुर्रायगा, दूसरे क़ैदियों को भी भड़कायगा। बहुत सख़्ती की जायगी तो 'सत्याग्रह' कर देगा।

दम्भदेव—फिर क्या किया जाय ?

दुर्जनमल—महाराज ! इस बेवकूफ़ ने "पंच-पुराण" द्वारा संस्थापित बिरादरी-बिलडिंग की बुनियाद हिलाने की चेष्टा की है, अतएव यह क़ौमी कौंसिल के 'वर्णविपर्यय' एक्ट की ७४६ वीं धारा के अन्तर्गत आता है।

दम्भदेव—हाँ-हाँ यह तो बहुत ही संगीन जुर्म है। इसके लिए तो मामला पंचराज के सुपुर्द करना पड़ेगा।

दीवान—महाराज की जय बनी रहे, यही मेरा मतलब है।

दम्भदेव—अच्छा, लाल लिफ़ाफ़ा लिखो, और मुक़द्दमे को फ़ैसले के लिए पंचराज की पंचायत में भेज दो।
(भेजा जाता है)

दूसरा दृश्य।

(स्थान पंचपुरी)

(पंचराज का दरबार)

जाति-पाँति ही का आधार !
है सारी उन्नति का सार ॥
छूत छात का छोड़ घमण्ड।
बकते हैं, जो-जो उद्दण्ड ॥
सब को पकड़ जेल में ठेल।
देखो, खूब निकालो तेल ॥

पंचराज—(दहाड़ कर) देखो, कलजुग में कोई धर्म भ्रष्टता के गीत न गाने पावे, जाति-पाँति का जितना विस्तार हो सके करो, मज़हबों को इतनी फैलावट दो कि एक-एक घर में छै छै मतवाले दिखाई देने लगें। ख़बरदार ! अछूतों

का कोई नाम भी न ले, अगर ले भी तो उसी वक्त हलक़ में 'फ़नायल' डाल कर तुरन्त जीभ साफ़ की जाय।

चमरों को चढ़ाता है, भंगी को भिड़ाता है।
उन्नति के अखाड़े में, वह टाँग अड़ाता है॥

मन्त्री—महाराज! यह घोषणा सबको सुनादी गई। श्रीमान् की कृपा से .खूब फूट फैल रही है, छूतछात ने बड़ा आनन्द कर रक्खा है, मादकता की मृदुलता से सारा संसार मुग्ध हो रहा है।

पंचराज—ह ह ह ह! हाँ तो हमारा आतङ्क अच्छा काम कर रहा है।

मन्त्री—महाराज! बहुत ज्यादह।

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—(मन्त्रीजी से) अन्नदाता! यह लाल लिफ़ाफ़ा है और बाहर पाँच सिपाहियों सहित एक आसामी भी मौजूद हैं।

मन्त्री—(लिफ़ाजा पढ़कर—हर्ष और आतङ्क से) सब को जल्द लाओ। (सब आते हैं)

सिपाही—(सलाम करके) हुजूर! इस आसामी ने रास्ते में हमारा नाक में दम कर दिया, कान खा लिये। 'सुधार-सुधार' ही चिल्लाता आ रहा है।

मन्त्री—अच्छा, चुप रहो-हम सब इन्तजाम कर देंगे। (पंचराज को सम्बोधन करके) महाराज! बँधुआ, श्रीमान् दम्भदेव ने, वर्णविपर्यय ऐक्ट की ७४६ धारा के अनुसार इस दरबार में फ़ैसले के लिये भेजा है। इसने अछूतों को उठाने या गिरों को गले लगाने की परोक्ष या

प्रत्यक्ष रूप से चेष्टा की है ! अब महाराज की जो आज्ञा ।

पंचराज--क्यों रे बेहूदे तू क्या बकता था ?

सुधारक—मैं नेकनीयती से लोगों का सुधार करता रहता हूँ, वैसे ही भजन भी गाता हूँ। आजकल अछूतों के उठाने का आन्दोलन जारी है। बस, इसी बात पर मुझे पकड़ लिया गया है।

पंचराज—हाँ—ठीक है !! "इसी बात पर !"—मानो, यह कुछ है ही नहीं !

सुधारक—साहब ! मैंने चोरी नहीं की, जारी नहीं की, डाका नहीं डाला, और भी कोई बुरा काम नहीं किया—फिर............

पंचराज—(बड़े ज़ोर से हँस कर) ह ह ह ह ! (मन्त्री की ओर मुँह करके) देखा, कैसा बेवक़ूफ़ है ! अपने क़सूर को चोरी, जारी, डाका वग़ैरह से भी कम समझता है।

मन्त्री—हाँ, हुज़ूर ! देखिये न ! मेरी राय में तो अब चपरपञ्चजी को बुला लिया जाय, जिससे वह इस आसामी से जिरह करलें और फिर फ़ैसला सुना दिया जाय।

पंचराज हाँ, ठीक है, बुलाओ ।

(चपरपंच का प्रवेश)

चपरपंच—(पंचराज से) महाराज की जय हो ! हाज़िर हूँ, हज़ूर !

पंचराज—अच्छा, चपरपंच, इस आसामी से हमारे सामने जिरह करो।

चपरपंच -(जो आज्ञा कहकर आसामी (सुधारक) की ओर मुख़ातिब हुए और हाथ में 'मिसल' लेकर पूछने लगे)

हाँ, तो, तुमने पंच-पुराण द्वारा संस्थापित बिरादरी-बिल्डिंग की बुनियाद हिलाने की चेष्टा की थी !

सुधारक—मैंने "अछूतों को अपनावेंगे, गिरों को गले लगावेंगे" सिर्फ़ यह भजन गाया था ।

चपरपंच—हाँ—वही बात, हमने सब बातें मिसल में पढ़ ली हैं । अच्छा, तो, तुम्हारा अछूतों को उठाने से क्या मतलब है ?

सुधारक—यही कि उनको पढ़ाया लिखाया जाय, सुनागरिक बनाया जाय, घृणा दूर की जाय जिससे वे दूसरे धर्मों में न जाने पावें ।

चपरपंच—इस तरह करने से बिरादरी बरबाद हो जायगी, चमार-भंगियों से घृणा न की जायगी, तो, सब सर-भङ्गी बन जायँगे ।

सुधारक—वह भी तो हिन्दुओं के भाई हैं, चोटी रखते हैं, राम और कृष्ण को मानते हैं, अपने को हिन्दू कहते हैं । घृणा की क्या बात है, अब भी तो किसी न किसी रूप में लोग उनको छूते हैं, और उनके हाथ का खाते भी हैं ।

चपरपंच—यह और बात है ।

सुधारक—मैं इन लोगों से मदिरा छुड़ाता हूँ, उन्हें और भी बुरे कामों से रोकता हूँ । आप देखते हैं कि, सहस्रों शिखा-सूत्रधारी छिप-छिप कर शराब पीते हैं—

चपरपंच—यह और बात है ।

सुधारक—रात-दिन बिरादरी में गुप्त रूप से कुकर्म हो रहे हैं, पर कोई कुछ नहीं कहता ।

चपरपंच - यह और बात है ।

सुधारक—बड़े-बड़े धोतीलटक्कू लोग चमारों का गुड़ गटकते, रेबड़ी कुटकते, बताशे सटकते और मुसलमानों के बने शरबत डकार जाते हैं, पर उनसे कोई कुछ नहीं कहता।

चपरपंच—यह और बात है

सुधारक—बेटी बेचने वालों की संख्या बढ़ती जाती है, बुड्ढ़ों के बिबाह हो रहे हैं, विधवा बिलबिला रही हैं, पर, इस ओर दम्भदेव का ध्यान नहीं गया।

चपरपंच—यह और बात है—अच्छा अब चुप रहो। तुम्हारी बातें सुन लीं, तुम बड़े मुँहज़ोर हो, कोई ढङ्ग की बात नहीं कहते।

पंचराज—अच्छा, मन्त्रीजी, अब इसका बकवाद बन्द करो, मैं बहुत जल्द सज़ा तजवीज़ करता हूँ।

मन्त्री—बहुत अच्छा, हुजूर! 'चुप रहरे' रेंकुआ।'

पंचराज—हाँ, तो, इसने पंच-पुराण द्वारा संस्थापित बिरादरी-बिल्डिंग की बुनियाद हिलाने की प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से चेष्टा की है—उस बिरादरी की जो सैकड़ों हजारों बरसों से बड़े-बड़े पापकाण्डों को देखती हुई भी हमारी ख़ातिर ज़िन्दा है—उस बिरादरी की जिसने अपने अस्तित्व के आगे किसी पाप-पुण्य का कभी विचार नहीं किया—उस बिरादरी की जो बड़े-बड़े आचार-हीनों को भी छाती से लगाकर सदैव उन्हें आश्रय देती रहती है—उस बिरादरी की जिसमें पतित से पतित भी मूंछों पर ताव देकर, साम्यवाद का उपदेश कर सकता है—उस बिरादरी की जिसने विधवाओं की बिलबिलाहट देख कर भी उनके विवाह की व्यवस्था देने का अपराध नहीं किया—उस बिरादरी की जिसने

ज़रा-ज़रा सी बातों पर लाखों लोगों को बाहिर कर अपना औचित्य पालन किया !!! हाय ! हाय !! ऐसी कल्पलता को यह सुधारक सुग्गा उखाड़ फेंकना चाहता है, ग़ज़ब !!! अच्छा, मन्त्री, इसे ५ साल के लिये जेल में ठेल दिया जाय।

मन्त्री—हजूर ! यह तो बहुत थोड़ी सज़ा है। एक दो दस पाँच आदमियों के क़त्ल करने की कोशिश करने वाले को इतने दिन का दण्ड दिया जाता है, पर, इसने तो 'पंच-पुराण' द्वारा प्रतिष्ठित सारी बिरादरी को ही उलट देने का मनसूबा बाँध लिया था, इससे लाखों लोगों की जान का नहीं ईमान का ख़तरा था।

पंचराज—(आश्चर्य से) बेशक ! हमारी सरकार दीन-ओ-ईमान की हिफ़ाजत के लिए तो क़ायम ही है। अच्छा, तुम्हीं बताओ क़ातिल से भी ज्यादा क़सूरबार आततायी को क्या सज़ा दी जाय ?

मन्त्री—महाराज ! मेरी राय में तो इसे बिरादरी से बाहर कर देना चाहिये। इससे उसके महाभयङ्कर प्रयत्न का प्रशमन हो जायगा, और हुजूर के क़ौमी कोड में यही "कैपिटल पनिशमैंट" है।

पंचराज—अच्छा ! अच्छा !!—मंजूर ! रेंकुआ विवाह शादी में न बुलाया जाय, बिरादरी से अलग, हुक्का-पानी बन्द, न्योता न दिया जाय, और किसी तरह का व्यवहार इसके साथ न रक्खा जाय। मन्त्रीजी हमारी इस आज्ञा को 'हुल्लड़-हैरल्ड' में छपवा कर 'मिसल' दम्भदेश के दरबार में भेज दो, और अब इस अभियोग का अन्त करो।

(परदा गिरता है)

पाखण्ड-प्रदर्शन

(प्रथम दृश्य)

(स्थान-पुरोहितपुरा)

पं० डमरूदत्त—हरे कृष्ण, बासुदेव, गोपाल, गोविन्द, चूड़ामणि, बड़ौ अनर्थ है गयौ, ग़जब कौ गोला गिर गयौ, आफ़त की आग बरसन लगी, संकट कौ सागर उमड़ि आयौ, शिव ! शिव !! चमारन कौ, जौ है ते, जे हौसलौ ! ऐसी हिम्मत !! इतनौ साहस !

ठा० सितारसिंह—मारो साले को ! कौनसा चमार पण्डितजी को तकलीफ़ पहुँचा रहा है । मारो ! मारो !! एक मत सुनो, लाठी से सिर तोड़ दो, और मौक़ा मिले तो पेट फ़ोड़ दो !

ला० मजीरामल—हाँ, हाँ ! दौड़ रे ठकुरिया ! देख पण्डितजी और ठाकुर साहब कहा कह रहे हैं । मार ससुरे के सिर पै तराजू कौ पलड़ा, और तोड़ दे लोहे के बाटन सूं कनपुटी ! आयो कहूँ को चमार-धमार ।

ठकुरी—(लालाजी का नौकर झुँझलाकर) लालाजी, तनिक पण्डितजी और ठाकुर साहब से यह तो पूछ लेते कि बेचारे चमार का क्या क़सूर है, और वे उससे इतने क्यों नाराज हो रहे हैं ? आव देखा न ताव, पूछ की न गछ ! तुम भी 'मार ! मार !!' चिल्लाने लगे, भला कोई बात है !

डमरूदत्त—जोहै ते ठकुरिया, तू बड़ौ लंठ है। अरे दुष्ट, आज हम पाठ कर रहे हते, मोई, जो है ते, चेता चमार कौ चाचा हमें पालागें कर कें चलौ गयौ, जासूं हमारी सबरी पूजा बिगर गई। पूजा में चमारादिकन कों सब्द सुनबोहू बुरौ बतायो गयो है। समझो कि नायं ?

ठकुरी—महाराज ! चमार से तो तुम इतनी घृणा करते हो, पर उस चुंगी के चपरासी (मुसलमान) से कुछ नहीं कहा जिसने ऐन आचमन के वक़्त, पानी के महसूल के तक़ाजे के मारे तुम्हारा नाक में दम कर दिया था।

डमरूदत्त—(क्रोध से) जोहै ते लंठ, चुपकौ रह, तू सास्त्रन के विखै में कहा समझे है। जोहै ते, लाला मजीरामल, ऐसे निकृष्ट-भ्रष्ट नौकर कूं निकार देहु। जोहै ते—

मजीरामल—चलरे ठकुरिया ! अपनौ रस्ता पकड़ ! हमारे पुज्जन के आगे ऐसी मोंहजोरी करेगौ तो कैसें काम चलेगौ। जा अपने घर बैठ। डेढ़ रुपया तीन आना तेरी तनुखा कौ निकरे है सो सात दिना पीछे लै जाइयो।

ठकुरी—अच्छा, सेठजी ! चल दिये, 'राम-राम।" कलियुग में सच्ची बात कहने वाले को ऐसा ही इनाम मिलता है !

सितारसिंह—पंडितजी, हमने सब चमारों की झोंपड़ियाँ उखड़वा कर फिकवा दीं। साले बड़े नमकहराम थे। पहन-पहन कर खद्दर के कुरते और ओढ़-ओढ़ कर गाँधी टोपी, जिस समय मेरी चौपाल के सामने अकड़ कर निकलते थे तो, मेरे गुस्से का ठिकाना न रहता था। फिर, आपके साथ यह वाक़आ हुआ, इसने तो मेरे छौंक ही लगा दिया !

डमरूदत्त—धन्न हो, ठाकुर जी, धन्न ! भगवान् करे, जो है ते, तुम्हारी बारी-फुलवारी बनी रहे, और याही प्रकार चमारन सूँ लड़ाई ठनी रहे।

मजीरामल—ख़ूब साव ख़ूब ! वा ठाकुरजी वा !! धन्न महाराज, धन्न !!! हम जैसे ब्राह्मन, ठाकुर बनिये न होंय तो माराज ! धरम धरती में धँस जाय और करम काँपतो डोलै। मैंने हूँ ठेठुआ ठकुरिया कूँ निकार दियो ! कहो कैसी रही ?

सब लोग—"ख़ूब रहे जी ख़ूब रहे।
कह पंडित के पैर छुए।"

(दूसरा दृश्य)

(स्थान चमार-चौपाल)

(बड़ी पंचायत)

चेता--पुरोनपुरा के बनिये, ठाकुर और बिरामनन नें हम निकार दिये। हमारो क़सूर कछू नहीं था। मैंने डमरू माराज कूँ पालागें करी और बह मारिवे दौड़ौ। ठाकुरजी कूँ हूँ गुस्सौ आय गयो, लाला हूँ बिगड़ बैठे, विचारी ठकुरी वैसें ही मारो गयौ। कैसौ अन्धेरखातो है, जापै सब पंच भय्या विचार करलें।

द्विजदास--बहुत बुरी बात है।

सरदार--अजी, अब इस तरह काम नहीं चलेगा। आख़िर हम लोगों ने भी तो पढ़ा-लिखा है। अगर इसी तरह अपमानित होते रहेंगे तो एस० एल० सी० की सनद और प्रथमा परीक्षा का प्रमाणपत्र किस काम आवेगा ?

चिम्मन—नहीं ! नहीं !! अन्धेर का वक्त गया, अब हम अत्याचार नहीं सहेंगे। अगर हिन्दू-समाज हम लोगों को इस तरह तङ्ग करेगा तो हम उसे हमेशा के लिये छोड़ देंगे।

चेता—(रोकर) भय्या ! मेरे ऊपर जो अन्याउ भये हैं तिनकूं मैं कैसे सुनाऊँ। रोज याही तरह तंग होत रहोगे, खानो न कमानो ! विचारे मटरू, सुरजा, चन्दा, झगडू और झम्मन के तो कऊ बेर जूता तक लगे हैं। गली में हैंके निकरन तक नहिं दयौ। दुजदसा और सिरदरा की पढ़ाई देख के तो ठाकुरजी के पैट में पानी है गयो है, पंडितजी भुन गये हैं, और लालाजी कुढ़न लगे हैं।

(चमारों की ऐसी नाराज़गी देख कर मौलवी तथा पादरी का आना और अपना उल्लू सीधा करना)

द्विजदास—मौलवी निजातअली, कहिये, आप क्या कहते हैं ? सब भाई ध्यान से सुनो।

मौलवी साहब—मेरे चमार भाइयो ! तुम अपने को जिस क़ौम के मुतअल्लिक़ बताते हो, वह मुतलक़ मुरदा और बिल्कुल बेवकूफ़ है। जब तुम्हारे साथ इस क़िस्म की सख़्तियाँ हो रही हैं, ऐसे ग़ैरमुहज्जिबाना बदसलूक किये जा रहे हैं, तो, तुम क्यों हिन्दुओं की दुम के पीछे दौड़ते फिरते हो ? जो शख़्स तुम्हें देखने, तुम्हें छूने, तुम्हारे साथ गुफ्तगू करने तक में नफ़रत करते हैं, उनके साथ उनसियत और उल्फ़त रखना या उनके गिरोह में अपने तईं समझना सख़्त नाआक़बत अन्देशी और कोरी हिमाकत है।

गुफ़ूर अहमद—चलो मसजिद में, कटाओ चोटी और बनो मुसलमान। हम तुम्हारे साथ हुक्का पीयेंगे और तुम्हारी रोटी खायँगे। तुम्हारे साथ रिश्तेदारी करेंगे और तुम्हें अपना दीनी भाई समझेंगे। जो हिन्दू आज तुम्हें देख तक नहीं सकते, कल उन्हीं के कुओं पर पानी भरना और अकड़ कर निकलना।

चमार लोग—"ठीक है! मंजूर!! मंजूर!! चलिए, मसजिद को और पढ़ाइये कलमा! राम न सही रहीम कहेंगे। अगर चोटी कट जायगी तो दाढ़ी पर हाथ फेरेंगे। पर, हिन्दुओं के हल्लों से तो बच जायँगे। बेचारे साहब बहुत देर से बैठे हैं, इनकी भी सुन लो और चलो।

पादरी मसीहशरन—भाइयो, मौलाना लोगों ने ठीक फ़रमा दिया है, हिन्दू लोग दर असल ऐसे ही हैं। तुम्हारे लिये मसजिदों और गिरजों के दरवाज़े खुले हुए हैं चाहे जिधर जाओ, पर हिन्दू मत रहो। मसीह की शरण में जाने से बड़े-बड़े अफसरों से मुलाक़ात होगी। साहबों से हाथ मिलाने का मौक़ा मिलेगा, नौकरी पाने की दिक़्क़त जाती रहेगी और कोट-पतलून के लिये तरसना न पड़ेगा।

मौलवी साहिबान—हाँ, ये भी ठीक कहते हैं, पर, बात पहली ही दुरुस्त है। अच्छा, तो चलो, जो हमारे साथ सीधे जामामसजिद को चलना चाहें वह उठ खड़े हों, और जो पादरीसाहब के पिछलगू बनें वह उनके साथ जायँ।

पंचायत—जाइये पादरी साहब, वह आपके साथ हैं—आइये मुन्शीजी हम तुम्हारे पीछे चलेंगे। बस, कजिया पाक, और मामला माफ़ हुआ।

(तीसरा दृश्य)

स्थान-दातागंज

(महल्ला-पुण्यपुरा)

सज्जनसिंह—देखो, पण्डितजी ! पुरोहितपुरा के चमार, मुसलमान बन कर अब इस शहर में भी आ गये हैं। कितने ही पढ़े-लिखे तो दफ़्तरों में मुंशी और बाबू हैं।

हरदत्त—अच्छा जी ! हमें दिखाना।

सज्जनसिंह—अरे ! अभी-अभी जो महादेव के मन्दिर पर कुए से पानी भर रहा था, तथा कल जो आप से हाऊस टेक्स के लिये तकाज़ा कर रहा था और आध घन्टे तक बराबर आपके पास पलंग पर बैठा रहा, क्या उसे पहचानते हो ?

हरदत्त—नहीं तो --

स० सिं०—यही तो चमार थे।

हरदत्त—चमार से मुसलमान कैसे हो गये, बड़े मूर्ख हैं जो अपना धर्म छोड़ दूसरे मत में जा पहुंचे।

शिवगुप्त—भाई, स्वार्थ बुरी बला है, वह आदमी से सब कुछ करा लेता है।

सज्जनसिंह—स्वार्थ क्या है ? चमार रह कर खाने-कमाने के लिए जो महनत-मशक्कत करनी पड़ती थी, उससे कहीं अधिक बेचारों को अब आफ़त झेलनी पड़ती है। मुसलमान क्या उन्हें कुछ दे देते हैं ? महनत करते हैं, कमाते और खाते हैं।

हरदत्त—स्वार्थ नहीं तो फिर क्या बात है ?

सज्जनसिंह—क्या बात है ? अगर ये चमार होते तो क्या तुम उन्हें अपने पलँग पर बैठने देते, कुओं पर चढ़ने देते, उनसे शरीर छुआते और हाथ मिलाते ?

हरदत्त—नहीं, ऐसा तो नहीं करते।

सज्जनसिंह—बस, इसी लिए उन्होंने तुम्हारा साथ छोड़ा, चोटी कटाई, और राम-कृष्ण के नाम को तिलाञ्जलि दी !

शिवगुप्त—बात तो ठीक है। महनत मजदूरी करके पेट तो हिन्दू धर्म में भी भर सकते थे। पर, व्यवहार उनके साथ बुरा था, इसलिए वे अलग हो गये।

हरदत्त—क्यों जी, ऐसे कितने हिन्दू बेदीन हो गये।

सज्जनसिंह—लाखों !

शिवगुप्त—शिव, शिव ! इसका अर्थ तो यह हुआ कि राम-कृष्ण का नाम लेकर हिन्दू जाति की रक्षा करने वाली हमारी बहुत बड़ी शक्ति कम हो गई, और हो रही है।

सज्जनसिंह—और क्या नहीं ?

हरदत्त—इस तरह तो हिन्दू जाति का लोप हो जायगा ! क्या इस से बचने का कोई उपाय नहीं है।

शिवगुप्त—क्या हमारे बिछुड़े भाई फिर नहीं मिल सकते ? क्या बिछुड़ने वालों को अपना बनाये रखने की कोई विधि नहीं है ?

सज्जनसिंह—है क्यों नहीं, आप लोग अपने हृदय में उदारता का संचार कीजिये, क्षुद्रता निकालिये, प्रेम पसारिये और हिन्दू-महासभा के प्रस्तावों को कार्यरूप में परिणत कीजिए।

शिवगुप्त—कौन से प्रस्ताव ?

सज्जनसिंह—क्या आपने नहीं पढ़े ? (अख़बार देकर) लीजिये, पण्डित जी, पढ़ कर सुनाइये।

हरदत्त—(पढ़ते हैं) "हिन्दू महासभा अछूतों को कुओं पर चढ़ने, और मन्दिरों में दर्शन करने का अधिकार देती है, उनसे घृणा न की जाय। यह महासभा राजपूत मलकानों की शुद्धि का समर्थन करती है।"

सज्जनसिंह—कहिए, हैं मंजूर ?

हरदत्त और शिवगुप्त—अच्छी तरह, दिलोजान से, होने दीजिए शुद्धि, मिलाइये बिछुड़ों को, और अपनाइये अछूतों को। हम साथ हैं, साथ हैं, साथ हैं ! जब हिन्दू-महासभा ने ही यह प्रस्ताव पास कर दिए तो हम कहाँ रहे ?

(चतुर्थ दृश्य)

(स्थान—कृष्णपुरी का भ्रातृ-सम्मेलन)

राजपूत मलकाना—स्वामीजी, हमारे पूर्वज शाही ज़माने में मुसलमान बनने को मजबूर किये गये थे। वे नाममात्र को वैसे बन गये पर उन्होंने हिन्दूपन नहीं त्यागा। हम उनके वंशज हैं। हिन्दुओं की तरह रहते हैं, जनेऊ पहनते हैं, गङ्गा, गायत्री और गाय को मानते हैं। हमने सुना है कि आप हमें फिर राजपूत बिरादरी में लेने को तैयार हैं। अगर ऐसा है तो मिला लीजिए।

स्वामीजी—खुशी से आओ, हिन्दू बनो, और अपनी राजपूत बिरादरी में मिलो। संकोच की कोई बात नहीं है। अब तक हज़ारों मलकाने हिन्दू बन गये, उनके साथ असली राजपूतों के शादी-सम्बन्ध और खान पान भी होने लगे। राजे-महाराजे तक उनके साथ हैं।

मलकाने—तो हमें भी शुद्ध कीजिए।

स्वामीजी—अच्छी बात है। पं० दयारामजी, शुद्धि की तैयारी कीजिए और इन भाइयों को मिलाइये। मैं जब तक उन लोगों से बातें करता हूँ, बहुत देर से बैठे हैं। हाँ, साहब, आप क्या चाहते हैं?

आगत लोग—हम चमार थे, गाँव वालों के अन्धेर और अत्याचार से मुसलमान हो गये। सुना है अब आर्यसमाज और हिन्दू-महासभा के उद्योग से हिन्दुओं में उदारता आ गई है, और उन्होंने विषम व्यवहार करना छोड़ दिया है। अब चमारों को कुओं पर चढ़ने दिया जायगा और उन्हे देव-दर्शन की आज्ञा मिलेगी तथा और भी उदारतापूर्वक व्यवहार होंगे।

स्वामीजी—निस्सन्देह।

आगत लोग—तो हमें फिर हिन्दू बनाइये और शुद्ध कीजिए। हमारे हृदयों में राम-कृष्ण के प्रति पहली ही-सी भक्ति और गंगा के लिए वैसा ही अनुराग है।

स्वामीजी—उस यज्ञशाला में जाइये, पण्डित दिनेशदत्तजी सब काम करा देंगे, और आप फिर हिन्दू हो जायँगे। समय बहुत हो गया, मुझे एक व्याख्यान देना है। मैं जाता हूँ, अब बाक़ी लोगों की बात पं० प्रियदर्शनजी सुनेंगे।

(स्वामीजी जाते हैं)

प्रियदर्शनजी—(तीसरे समुदाय से) आप कौन लोग हैं?

समुदाय—हम चमार हैं। जब से हिन्दू-महासभा हुई है, हमने मदिरा-मांस का सेवन छोड़ दिया है, शुद्धतापूर्वक रहते हैं। महनत करते हैं और ईमानदारी से पेट भरते हैं। हमें भी कुओं पर चढ़ने, सभाओं में एक

फ़र्श पर बैठने और मन्दिरों में दर्शन करने की आज्ञा दी जाय।

प्रियदर्शनजी—पहले ही दे दी गई। अब आप लोग सब काम कीजिये, कोई विरोध न करेगा। मुसलमान और ईसाइयों की बात न मानिये।

समुदाय—शायद ऊँची कौम के लोग हमें ऐसा न करने दें।

प्रियदर्शनजी—हिन्दू-महासभा में सब शामिल थे। सबने एक-मत होकर प्रस्ताव पास किये हैं, कोई विरोध न करेगा। आप लोग जाइये और हिन्दू-जाति के सच्चे सेवक बनिये।

× × × ×

स्वामीजी—कहिये, शुद्धि हो गई ? यज्ञ की तैयारी ठीक है ? सब लोग आ गये ?

प्रियदर्शनजी—हाँ महाराज, शुद्धि का कार्य हो चुका, सब लोग मौजूद हैं, शुद्ध हुए लोग भी बैठे हैं, परन्तु चमार भाइयों की प्रतीक्षा है, वे भी आते होंगे।

चमार लोग—आगये, महाराज ! आगये।

स्वामीजी—अच्छा, पहले सब लोग मिलकर ईश्वर-प्रार्थना करें, फिर हवन शुरू होगा।

प्रियदर्शनजी—(स्वामीजी से) महाराज ! तो अब अग्न्याधान किया जाय ?

स्वामीजी—हाँ, पूछने की क्या बात है ? यथाविधि सब कार्य करते जाइये।

[बड़े समारोह से यह बड़ा यज्ञ हुआ और यज्ञ की समाप्ति पर 'संगच्छध्वं संवदध्वं' मन्त्र का पाठ हुआ और एक भजन के बाद समस्त कार्यवाही समाप्त की गई।]

'करमफोड़ कम्बख्तराय'

१

पढ़ कर अङ्गरेजी भरपूर ।
शिखा-सूत्र कर डाले दूर ॥
हिन्दूपन का मेंट निशान ।
बन बैठा कोरा कृष्टान ॥

२

टूटी कुमर झुक गय कंध ।
हुआ तीन चौथाई अंध ॥
सूखा पेट सिकुड़ कर आँत ।
पिचके गाल चमकते दाँत ॥

३

'कैमिष्ट्री[1]' सब डाली घोट ।
'साइन्सों[2]' को गया सपोट ॥
पका न पाया रोटी दाल ।
क्रिया-कुशलता का यह हाल ॥

१—रसायन शास्त्र, २—विज्ञान ।

४

'अर्थ-शास्त्र' का हूँ आचार्य ।
फिरूँ खोजता सेवा-कार्य ॥
बन जाऊँ दासों का दास ।
दे दे कोई रुपे पचास ॥

५

'हिष्ट्री[१]' चाट भखा 'भूगोल' ।
पर, इनका कुछ मिला न मोल ॥
याद रही है बस यह बात—
"हिन्दू थे वहशी बदज़ात" ॥

६

'रेखा', 'अङ्क', 'बीज' से विज्ञ ।
कहलाऊँ प्रसिद्ध गणितज्ञ ॥
तो भी बनियाँ करैं कमाल ।
ठगे, न तोले पूरा माल ॥

७

पाने को पूंजी की 'पर्स[२]' ।
पढ़ डाली सारी 'कौमर्स[३]' ॥
'बुककीपिंग[४]' का बूंका मार ।
हुआ न मेरा बेड़ा पार ॥

१—इतिहास, २—थैली, ३—वाणिज्यविद्या, ४—अंग्रेज़ी वही खाता ।

८

मुण्डी पढ़े करें आनन्द।
बैठे लिखें लगाय मसन्द॥
पर, मैं हूँ बिलकुल बेकार।
आफ़िस मिले न साहूकार॥

९

बना 'डाक्टर' आया जोश।
भर दूँगा सम्पति से कोश॥
पर 'पेशेंट[१]' न आवें पास।
कह-कह मुझको 'ख़ब्तहवास'॥

१०

'टीचर[२]' बना मनाया हर्ष।
ज्यों त्यों काटा पहला वर्ष॥
छात्र पढ़ाये करके टेक।
सौ में पास हुआ बस एक॥

११

लेकर कर्ज़ किया व्यौपार।
बेचे बिस्कुट, सेब, अनार॥
किये न लोगों ने 'पेमेंट[३]'।
घाट सहा 'सेंट पर सेंट[४]'॥

१—रोगी, २—अध्यापक, ३—भुगतान, ४—सौ फ़ीसदी।

१२

अख़बारों की उन्नति देख ।
लिखने लगा लेख पर लेख ॥
छपा न कोई भी कम्बख़्त ।
हैं 'एडीटर' ऐसे सख़्त ॥

१३

'प्रीचर'-'प्रीस्ट[1]' बना मन मार।
काटे मास तीन या चार॥
करता रहा 'गौड[2]'-गुणगान।
गाते-गाते थकी ज़बान॥

१४

मिलता नहीं कहीं कुछ काम।
पास नहीं है एक छदाम॥
ऐसे कुसमय में करतार।
सुन ले नीचे लिखी पुकार—

१५

"लीडर बनूँ, फिरूँ स्वच्छन्द।
होहि द्वार दुःखों के बन्द॥
स्वार्थ और परमार्थ पसार।
करता रहूँ देश उद्धार॥

१—व्याख्याता, पुरोहित, २—परमेश्वर।

बुढ़ऊ का ब्याह

प्रथम अङ्क

पहला दृश्य

स्थान—पतितपुरा

लम्पटलाल—सच समझना भाई, दुर्मतिदेव! बड़ा बुरा समय आ गया! चारों ओर से कर्ज़ ने मुझे कस किया है, तक़ाज़ों के मारे नाक में दम है, शर्म से गड़ा जाता हूँ, और आफ़तों से मरा जाता हूँ।

दुर्मतिदेव—हाँ सेठजी, इसमें क्या सन्देह है, आपका घराना कोई मामूली था क्या? इस चौखट पर ऐसे-ऐसे काम हो चुके हैं कि जिन्हें दुनिया याद करती रहेगी। लेना-देना तो लगा ही रहता है। परमात्मा की कृपा से आप शीघ्र ही उऋण हो जायेंगे और फिर उसी तरह मौज उड़ेगी।

लम्पटलाल—क्या बताऊँ महाराज! बड़ी मुसीबत है, लड़के छोटे-छोटे हैं। अब लड़की भी विवाह योग्य हो गई, उसकी फ़िकर अलग सताये डालती है। आखिर विवाह-शादी के लिये भी तो रुपयों की आवश्यकता होगी।

दुर्मतिदेव—सब भगवान् भला करेगा। आपके लड़के बड़े हुए जाते हैं, जायदाद न रही, न सही। आफ़त आने पर रिश्तेदारों से सहायता लेकर काम चला लेते हैं। आप भी ऐसा ही कीजिए, क़र्ज चुक जायगा।

लम्पटलाल—आपद्धर्म में सब कुछ कर लेना पड़ता है। मगर मेरा तो ऐसा कोई रिश्तेदार है भी नहीं जो इस आड़े वक्त में सहायता दे सके।

दुर्मतिदेव—लड़कों के सम्बन्ध अच्छी जगह कर लो, खूब दहेज आवेगा और काम बन जायगा।

लम्पटलाल—महाराज, आप भी कैसी बातें करते हैं। भला एक कंगाल के घर कौन अपनी लड़की ब्याह देगा! सो भी वैश्य-जाति में, और वह भी हमारे यहाँ?

दुर्मतिदेव—"सो भी वैश्य जाति में" यह क्या कहा? क्या बनियों में विवाह नहीं होते?

लम्पटलाल—होते क्यों नहीं? पर हम जैसे ग़रीब क़र्जदारों के यहाँ नहीं, जिनके पास न गहना है न कपड़ा।

दुर्मतिदेव—नहीं, सेठजी! तुम्हारे लड़के तो बारह-बारह चौदह-चौदह बरस के ही हैं, पर हमने तो हिन्दू जाति में बूढ़ों तक के विवाह होते देखे हैं।

लम्पटलाल—भाई वे बेटी वाले को रुपये गिनाते हैं और शादी कराते हैं मेरे पास धन होता तो रोना ही क्या था। फिर तो बीसियों नाइयों के टट्टुए मेरे मकान के मैदान में हिनहिनाते नज़र आते।

दुर्मतिदेव—अच्छा, मैं समझ गया, ठीक है! तुम और सब बातें छोड़ कर पहले चतुर चम्पा का विवाह करो। फिर इस हवेली में रुपयों की कमी न रहेगी। बस और सब विचार त्याग दो।

लम्पटलाल—हे भगवान, ऐसा कौन अमीर अन्धा होगा जो इस टूटी झोंपड़ी में आकर अपना मोहर उतरवायेगा और मुझे मालामाल बनायेगा।

दुर्मतिदेव— इसका प्रबन्ध मैं करा दूँगा आप निश्चिन्त रहिए और अब सो जाइये

लम्पटलाल—अच्छी बात है।

(दोनों जाते है)

दूसरा दृश्य

स्थान—निकृष्टनगरी

द्रव्यदास—(हाथ में चिट्ठी लेकर) हाय; ग़जब हो गया, संकट का सागर उमड़ पड़ा, आसमान से अङ्गारे बरसने लगे, धरती काँप उठी ! ६५ साल की उमर में सातवाँ विवाह किया था सो 'वह' भी मर गई !!! भगवान् ! अब मै किसका होकर रहूंगा और कौन का पति कहलाऊँगा ? हाय ! मेरा सत्यानाश हो गया ! रे—हाय! मैं किसी काम का न रहा रे—राम—अब ये धन-दौलत किस काम आवेगी—रे—राम !!!
(रोता है)—

मोधू मुनीम—अजी, सेठजी ! इतने क्यों घबराते हो, बिगड़ा घर फिर बस जायगा, धीरज, से काम लो, सब्र रक्खो। ऐसी भी क्या व्याकुलता !

भोंदूभक्त— लाला द्रव्यदास, संसार की गति ऐसी ही है। पुरानी पैर की जूती जाती है और नई आती है। भरे रहें आपके भण्डार और चाहिए ख़रच करने को रुपया। बस मामला ज्यों का त्यों हो जायगा।

निदुरिया नाई—सेठजी, अहन रोइबिनका का काम। हमारे महल्लामां एक पण्डित दुर्मतिदेव रहन करिन तौन सब काम कर दीन। कहौ तो तौन बोलाय लाईन।

मोधू मुनीम—न मानेगा रे-निदुरिया। जिस समय सेठानी बीमार थीं और रिज़र्वगाड़ी में सोलन भेजीं गई थीं तभी हमने अगली आपत्ति सोच कर सब काम ठीक कर लिया था।

मांदूभक्त—और क्या! मुनीमजी बड़े चतुर चूड़ामणि हैं। इन्हें अक़्ल की आग और बुद्धि की बारूद समझना चाहिये।

द्रव्यदास—(आँसू पोंछ कर) अच्छा तो कोई है लड़की? मुनीमजी जल्द उद्योग करो, रुपये की चिन्ता मत करना, जो चाहो सो उठाना।

मोधू मुनीम—हाँ-हाँ सेठजी, आप धीरज धरिये और सेठानी जी के क्रिया करम से फ़ारिग़ हो लीजिए-सब काम हो जायँगे। जाइये, रोटी खाइये और पानी पीजिये। अरे निदुरिया नाई—सेठजी को न्हिलाने के लिए ताज़ी पानी ला और पूजा का सामान रख।

निदुरिया—बहुत अच्छा, मुनीमजी!

(सब जाते हैं)

तीसरा दृश्य

स्थान—मुनीमजी का मकान

(निकृष्टनगरी)

अनजान आदमी—(जोर से पुकारता है) मोधू मुनीम मकान में हैं क्या—मोधू मुनीम?

मोधू मुनीम—आया—कहिये क्या बात है? आपका नाम—

अनजान आदमी—मेरा नाम पं० दुर्मतिदेव ज्ञानसागर है।

मोधू मुनीम—प्रणाम महाराज! आपकी तो बड़ी प्रतीक्षा थी। निदुरिया को आपके पास कई बार भेजा था पर आप मकान पर मिले नहीं।

दुर्मतिदेव—हाँ, मैं पतितपुरा में पण्डिताई करने गया था। वहाँ से आज सवेरे ही आया हूं। सुना है, दाता द्रव्यदास की इस पत्नी का भी देहान्त हो गया!

मोधू मुनीम—हाँ! महाराज, बड़े रंज की बात है, सेठजी बहुत दुखी हैं।

दुर्मतिदेव—रंज और दुःख की क्या बात है, मुनीमजी! वह बहू अपनी जान से गई, दूसरी दुलहिन उन्हें मिल जायगी। कहो हैं लाख की चौथाई गिनने को तैयार?

मोधू मुनीम—बड़ी खुशी से—रुपये की क्या कमी! और फिर इस काम के लिए। मामला पक्का कीजिए और आप भी अपनी दक्षिणा लीजिए।

दुर्मतिदेव—सब ठीक-ठाक है। पतितपुरा के लम्पटलाल की लड़की के सम्बन्ध की बात-चीत हो जायँगी। ढाई हज़ार रुपये मुझे देने पड़ेंगे। बोलो क्या कहते हो?

मोधू मुनीम—मंजूर! मंजूर!! चलो पतितपुरा, दिखाओ लड़की और कराओ उसके बाप से बातें।

दुर्मतिदेव—चलिये, और कुछ रुपये भी साथ ले लीजिये।

मोधू मुनीम—ज़रा ठहरिये-हाँ चलिये-चलिये, निदुरिया नाई का इन्तज़ार था वह भी आ गया। चलत्रे जल्दी चल। नाक पर दीया जलाकर अब घर से निकला है।

(तीनों पतितपुरा जाते हैं)

चौथा दृश्य

स्थान-निकृष्टनगर।

(सेठजी की हवेली)

द्रव्यदास--कहिये मुनीम मोधूमल जी, कुछ उद्योग किया ? भोंदूमल तो कहते थे कि मुनीम जी परसों पतितपुरा गये हैं, सो वहाँ कामयाबी हुई या यों ही चले आये ?

मोधू मुनीम--सेठजी, सब काम ठीक है, इन पं० दुर्मतिदेवजी ने बड़ा उद्योग किया है। लड़की देख ली गई और उसके बाप से बातचीत भी होगई। मामला १५ हज़ार पर ठहरता है—कहिए क्या कहते हैं ?

द्रव्यदास--अरे-उसकी उम्र क्या है ? कुछ खबसूरत भी है या यों ही—रुपये पैसे की कोई चिन्ता मत करो, पन्द्रह हज़ार ही सही पर शादी तो इसी शरद पूनों पर हो जाय।

दुर्मतिदेवजी--नहीं सेठ जी, शरद पूनों का विवाह, जो है ते नहीं बने हैगा। कुछ दिन पीछे देवठान पर हो जायगा।

मोधू मुनीम—देवठान ही सही।

द्रव्यदास—बहुत लम्बी बात चली गई—देवठान के अब से तीन महीने हैं—पर ख़ैर-जब ही सही।

भोंदूभक्त—महाराज दुर्मतिदेवजी, अब की बार आप ऐसे घड़ी-मुहूर्त विचारें कि सेठ जी रँडुआ न हों वह भले ही...............

मोधू मुनीम—हाँ पण्डित जी, यही मेरी प्रार्थना है।

दुर्मतिदेव—भगवान् ने चाहा तो ऐसा ही होगी।

मोधू मुनीम – सेठजी क्या आज्ञा है ? आप कहें तो दुर्मतिदेव के साथ निदुरिया नाई को आधे रुपये ले कर पतितपुरा भेज दें।

भोंदू भक्त—और क्या ? मामला पक्का हो जाय और नेग-टेहले शुरू होने लगें।

द्रव्यदास—हाँ-हाँ मुनीमजी, कह तो दिया। रुपये की कुछ बात नहीं, विवाह जल्दी होना चाहिये।

मोधूमल—अच्छी बात है, भगवान् की दया से जल्द होगा। पण्डितजी, आप निदुरिया नाई को लेकर पतितपुरा जायँ और लाला लम्पटलाल से सब बातें तय कर आवें।

दुर्मतिदेव—(कान में धीरे से) मामला तो सब ठीक ही है। सगाई-लगुन साथ-साथ आवेंगी। इन पन्द्रह हज़ार में से ढाई हज़ार मैं अपने घर रख जाऊँगा।

मोधूमल—(कान में) ढाई हज़ार मैं अपने यहाँ रक्खे लेता हूँ। (कान में) सुनरे-निदुरिया तू भी अपनी थैली बाल-बच्चों को देता जा। लम्पटलाल को तो सिर्फ़ नौ हज़ार देने हैं न। चौका अब दे आओ और पंजा विवाह के वक्त (प्रकट) हाँ तो समझ गये न आप। मैंने जो कान में कहा है सब बातें पहले ही तय कर लेना जिससे विवाह के समय गड़बड़ी न हो।

दुर्मतिदेव और निदुरिया – हाँ-हाँ साहब, सब बातें लो, सब।

(जाते हैं)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—पतितपुरा का बाज़ार

(बारात की अगवानी)

मोधूमल—अबे ढोल-ताशे वालो ! ज़रा जोर से बाजे बजाओ। क्या मुरदे की तरह हाथ चलाते हो ! पीछे हटो, आगे अङ्गरेज़ी बाजे वाले आवेंगे।

भोंदूमल—अरे डण्डे वालों। इधर आओ, सेठजी की पालकी के पास रहो। देखा, ससुर फुलवाड़ी वाले कैसे इधर उधर चल रहे हैं—अबे इधर आओ, ज़रा क़तार बाँध कर चलो।

निदुरिया नाई—मुनीमजी—जे आतिशबाज़ ससुर पुरुआ-पटाखे और गोलान कूँ ऐसे धड़ाके ते छुड़ाय रहिन के सेठ जी उछर-उछर पड़िन—डरप रहिन।

मोधू मुनीम—अबे चल-चल, सेठजी की पालकी का पीछा न छोड़। जा उनके पास।

द्रव्यदास—(पालकी में से) अरे मोधू-मोधू, देखना, कहीं किसी बराती को तक़लीफ़ न होने पाये। राय बहादुर मुक्का-राम और राजा चक्खूचरन की खूब खातिर रखना, और उन गाने वाली औरतों को भी न भूल जाना। भड़कीले भाँड़ आये कि नहीं ?

मोधू और भोंदू—सब आ गये ! सब ठीक है, आप चिन्ता न करें।

द्रव्यदास—हाँ, तुम जानो तुम्हारा काम। देखना, किसी को तकलीफ़ न हो, मैं तो यहाँ दूल्हा बना बैठा हूँ।

दाताराम—(हाथी पर से) मुनीमजी ! मुनीमजी ! कम सुनते हो क्या ? अरे, बखेर के लिए पचास थैली और भिजवाओ, पहली सब समाप्त हो गईं ।

मुनीमजी—अच्छा, अच्छा अभी आती हैं, घबराओ मत, यह लो वे आ गये थैलीबरदार, अब खूब बखेर करो ।

स्वागतसिंह--बस-बस, बाजे वालो, अब यहीं रुक जाओ,बारात इसी मकान में ठहरेगी आगे कहाँ जा रहे हो ?

(सब लोग स्वागसिंह के बताये जनवासे में ठहर जाते हैं)

छठा दृश्य

स्थान—पतितपुरा का–नीतिनिवास महल्ला

(समय ६ बजे रात्रि)

धर्मवती--(अपने पति धर्मदेव से) आज तो लाला लम्पटलाल के यहाँ बड़ी भारी बारात आई, बुड्ढे वर ने खूब खाक उड़ाई, बड़े बाजे बजे और धड़ाके की धूमधाम हुई । शर्म नहीं रही इस पापी को ! राम ! राम !! रुपये गिन कर बेटी बुड्ढे को ब्याह दी ! भाड़ में झोंक दी !! न जाने इस नीच का कैसे भला होगा ?

धर्मदेव--अरे इस लम्पट पापी का नाम मत लो, जिस समय उस बुड्ढे खुर्राट वरना को बारात के साथ पालकी में बैठे देखा, तो लोग लम्पट को ऊकने-थूकने लगे। लानत के मारे उसका नाक में दम कर दिया ।

धर्मवती--अजी, उस बेजोड़ बूढ़े वरना को मैंने भी देखा था, और भी सैकड़ों स्त्रियाँ इस अघटित घटना को देख रहीं थी । लम्पट ने बड़ा पाप कमाया ! कंचन सीं

कन्या कुरूप कौए के हवाले करदी ! राम ! राम !! कहाँ चतुर चम्पा और कहाँ ये बूढ़ा बन्दर !

सुखदा--(धर्मवती की बहिन) अजी, जीजी ! जब वह बूढ़ा बन्दर पालकी में बैठा, पोपला मुँह चलाता और चुंधी आखें चमकाता था तब तो बड़ी ही हँसी आती थी। हाय ! हाय !! लम्पटलाल ने बड़ी ही नीचता की। ऐसे नराधम न जाने क्यों भू-भार बढ़ाने को आते हैं।

धर्मदेव--इस बूढ़े बन्दर को कुछ न.....................अरे रामसुख (छोटा भाई) यह शोर काहे का हुआ ? हल्ला क्यों मचा ? दौड़ जल्दी दौड़, पता लगाकर ला क्या बात है ?

दीनदयालु--(धर्मदेव का मित्र घबराता हुआ आता है) लालाजी ग़ज़ब हो गया ! लम्पटलाल की लड़की चम्पा शरीर में आग लगाकर मर गई ! उसकी माँ कुएं में गिरने को तैयार है।

धर्मदेव--(आश्चर्य से) क्यों, क्या बात हुई ?

दीनदयालु—अजी उस बूढ़े वर को देख कर सारे पुर-परिवार में शोक छा गया ! चम्पा और उसकी माँ के संकट का तो पारावार ही न रहा।

धर्मदेव—आख़िर वात क्या हुई ?

दीनदयालु--बात क्या हुई? रुपयों पर धामकधम्मा हो जाने से फेरे पड़ने में विलम्ब हुआ, लड़ाई की नौबत आ पहुँची। चम्पा दुखी होने लगी और वह किसी जरूरत के बहाने मण्डप से दूसरे कमरे में चली गई। वहाँ उसने अपने ऊपर मिट्टी का तेल उड़ेल कर कपड़ों में आग लगा ली और मर गई। इस दुर्घटना से नगर और

घर में कुहराम मच रहा है ? शोक के शौले फूट निकले हैं !!

धर्मदेव—धन्य ! उस कन्या को अपने उद्धार का अन्तिम उपाय बलिदान ही सूझा। यह लम्पटलाल की लम्पटता पर लात मार कर स्वर्गवासिनीं हुई, परमात्मा ऐसी विशुद्ध बालिका को अवश्य सद्गति देगा। वह तो बड़ी पुण्यशीला........................ ।

रामसुख--लीजिये साहब ! सारा मामला पलट गया ! विवाह के स्थान में चम्पा की अर्थी कसी जा रही है। लम्पट-लाल बेटी को नही रुपयों के लिये रो रहे हैं। "हाय-हाय !" मची हुई है। घर वालों को तो इस बुड्ढे बिलौटे के विकराल रूप तथा लेने-देने की कुछ खबर भी न थी। उन्हें तो १६ वर्ष का वर बताया गया था। चम्पा भी इसी बात को सुनती रहती थी। यह तो सब लम्पट लाला की लम्पटता और दुर्मति ब्राह्मन की दुर्मति का कुफल निकला !

धर्मदेव—चलो, लम्पट के मकान पर चलें और वहाँ चल कर सब घटना देखें।

(सब गये परन्तु घर में "हाहाकार" होता देख उल्टे पैरों चले आये। इस समय तक बारात वापिस हो गई थी।)

सातवाँ दृश्य

स्थान—धर्मशाला

(पतितपुरा और निकृष्टनगरी के पचासों पंच बैठे पंचायत कर रहे हैं)

देवीदत्त—आशा है कि आप लोग लम्पटलाल और द्रव्यदास सम्बन्धी दुर्घटना का हाल ज्ञात कर चुके होंगे। चम्पा के बलिदान की चर्चा भी सुन ली होगी।

वेदप्रकाश—अच्छी तरह सुन चुके हैं, अब आप चम्पा की मृत्यु-वार्ता का वर्णन कर पंचों को न रुलाइये, उन नीच नराधमों का नाम न लीजिये, हमारे कान पके जाते हैं और कलेजा काँप रहा है।

सत्यदेव—अब तो इस पंचायत को यह फैसला देना चाहिए कि इस दुर्घटना से जिन-जिन पापियों का सम्बन्ध है और जिन के कारण यह हुई है उनका सदा के लिए वहिष्कार किया जाय, उनकी शकल देखने तक में पाप समझा जाय। उनसे सब प्रकार के सम्बन्ध-विच्छेद कर दिये जायँ। सम्भव हो तो इन नीचों के पुतले बना बना कर जलाये जायँ, इन्हें नीचातिनीच समझा जाय। कहिए है मंजूर ?

पंचायत—"मंजूर, मंजूर, मंजूर" ऐसे पापियों का यही हाल होना चाहिये।

देवीदत्त—नहीं साहब, इतने से काम न चलेगा। आगे ऐसी दुर्घटनायें न हों इसके लिए भी कुछ प्रबन्ध सोचना चाहिए।

वीरभद्र—प्रबन्ध क्या ? इस समय यहाँ सब जातियों से सम्बन्ध रखने वाले, पचास गाँवों के हजारों आदमी बैठे हैं अगर सब की राय हो तो इस समय यह तय किया जाय कि भविष्य में बाल-विवाह तथा वृद्ध विवाह करने वालों का कोई साथ न दे, ऐसी शादियों में शामिल होना पाप समझा जाय।

चन्द्रसेन—नहीं साहब. इतना और कीजिये कि अगर यह पता लग जाय कि इस विवाह के लिये रुपये लिये हैं तो उसमें भी कोई शरीक न हो।

वीरभद्र—हाँ, यह बात भी मानने लायक़ है, कहिये साहब आप लोग क्या कहते हैं। है प्रस्ताव स्वीकार?

सब लोग—हाथ उठाकर—"मंजूर, मजूर, मंजूर।"

देवीदत्त—अगर इन पचास गाँवों में से कोई आदमी ऐसी शादियों में शामिल हुआ तो उस पर १०१) जुरमाना किया जायगा।

सब लोग—"ज़रूर किया जाय, मंजूर।"

चन्द्रसेन—देखिये जोश में नहीं होश में आकर हाथ उठाइये, कहीं पीछे प्रतिज्ञा-भ्रष्ट न होना पड़े।

सब लोग—नहीं, साहब, ख़ूब समझ लिया है, ऐसे पापकाण्ड देख कर कलेजा काँपता है, भला कौन पापी होगा जो इस प्रकार के नीच कर्मों का साथ दे।

नित्यानन्द-सुनिये साहब, सुनिये, देखिये यह दीनदयालुजी कहते हैं। हाँ साहब, ज़रा ज़ोर से फ़रमाइये जिससे सब सुनें।

दीनदयालु—आज भीमपुरा की कचहरी में बड़ा विचित्र दृश्य था। लम्पटलाल और द्रव्यदास दोनों गिरफ्तार हो गये, पुलिस ने उन्हें पकड़ कर हवालात में भेज दिया। सुना है यह सब चम्पा के बलिदान के कारण ही हुआ है। सुना है उस "विवाह" में सहयोग देने वाले और भी कई आदमियों पर आफ़त आयेगी।

पंचराज—इसमें ताज्जुब की कोई बात नहीं है। जो आदमी जैसा काम करता है उसे वैसा ही फल भी मिलता है। चम्पा निर्दोष थी, उसने अपना शरीर बुड्ढे वर को सुपर्द न कर अग्नि देवता के अर्पण कर दिया! वह धन्य है। अच्छा अब सब बातें तय हो गयीं, यह पंचायत समाप्त की जाती है। (सब लोग जाते हैं)

अगुआ की आत्म-कथा

१

वकालत का था बड़ा गुमान।
इसी पर हो बैठा वीरान ॥
मगर यह हप्पो चली न हाय।
बन गया मैं पूरा असहाय ॥

२

नौकरी लगी न कोई हाथ ।
बड़ा था कुनवा मेरे साथ ॥
घूमता रहा काटता काल ॥
हाल सब हुआ, हाय ! बेहाल !!

३

मिला साहब से सौ-सौ बार।
न पाया तो भी उसका पार ॥
सही घुड़की, झिड़की, फटकार।
अन्त में गया हौसला हार ॥

४

तिजारत का भी किया विचार।
बिना धन कैसे हो व्यापार ?
न कोई करता था विश्वास ।
क़र्ज़ की त्याग चुका था आस ॥

५

कर रही थी महँगी रसभंग ।
छिड़ी थी निर्धनता से जंग ॥
किसी पर चढ़ता देख न रंग ।
हुआ अब और काफ़िया तंग ॥

६

अन्त में जगी देश की भक्ति ।
मिली फिर मुझे अनोखी शक्ति ॥
देश-दुर्दशा बखान बखान ।
तोड़ने लगा निराली तान ॥

७

कभी साहित्य-सिन्धु का जन्तु ।
कभी था धर्म-ध्वजा का तन्तु ॥
बजा कर राजनीति का ढोल ।
चढ़ाता रहा पोल पर खोल ॥

८

बोलता था जब मैं किलकार ।
मेज़ पर मचल, दुहत्थड़ मार ॥
समझते थे तब सब अनजान ।
"देश पर होगा यह क़ुरबान" ॥

९

मगर मैं चलता था वह चाल ।
न होता बाँका जिसमें बाल ॥
दिया उपदेश, किया आराम ।
यही था बस मेरा 'प्रोग्राम' ॥

१०

'लीडरी' में है हाँ आनन्द ।
इसी से है वह मुझे पसन्द ॥
प्रतिष्ठा पाता हूँ चहुँ ओर ।
मचा कर ज़ोर-ज़ोर से शोर ॥

११

मिली है, जनता रूपी गाय ।
बड़ी भोली-भाली है हाय !
दुहा करता हूँ मैं दिन-रात ।
न 'कपिला' कभी उठाती लात ॥

१२

भर गया अब मेरा भण्डार ।
हुआ संकट-सागर से पार ॥
सुखों का सिन्धु हुआ परिवार ।
किया जनता ने पुनरुद्धार ॥

१३

रेल का पहला, दूजा क्लास ।
हमारा बना प्रवासावास ॥
गाड़ियाँ - ताँगे दिये विसार ।
ख़रीदी बढ़िया 'मोटरकार' ॥

१४

बनाई कोठी विशद विशाल ।
सजाये सुन्दरता से 'हाल' ॥
विदेशी है सारा सामान ।
छोड़ कर खादी के कुछ थान ॥

१५

देवियाँ हैं ऐसी शौक़ीन ।
माँगतीं वस्त्र महीन - महीन ॥
न भाता उन्हें स्वदेशी माल ।
इसी से है यह उनका हाल ॥

१६

धार कर विमल-विदेशी 'सूट' ।
डाटता हूँ 'डासन' का 'बूट' ॥
'घरेलू' है यह मेरा वेश ।
न इस पर उचित विवाद विशेष ॥

१७

मगर है 'पब्लिक लाइफ़' और ।
न उसमें कहीं ठेस को ठौर ॥
पहन कर खद्दर की पोशाक ।
जमाता हूँ जनता पर धाक ॥

१८

'छींक दूँ' या लूँ कभी 'डकार' ।
खटक जाता है, त्योंही तार ॥
जियें जुग-जुग देसी अख़बार ।
कर रहे मेरा यश-विस्तार ॥

१९

किया मैंने अपना उद्धार ।
कमाकर 'कीर्ति' और 'कलदार' ॥
इसी विधि करे अगर सब देश ।
न बाक़ी रहे क्लेश का लेश ॥

२०

जाति को करना है स्वाधीन।
लिखो तब, लेख नवीन-नवीन॥
शब्द-शर और कोप की 'तोप'।
इन्हीं से है, उन्नति की 'होप'[1]॥

२१

हाथ में ले लो क़लम-कुठार।
निकलने दो मुँह से फुसकार॥
मारना मत 'कर्तव' की डींग।
नहीं तो निकल जायगी मींग॥

---

१ आशा।

काव्य-कण्टक का कोप

(१)

मुझे क्यों कवियों का सरताज ।
न कहते सम्पादक महाराज ॥
सुखा कर सेरों अपना खून ।
भेजता नये-नये मज़मून ॥

(२)

न छापा तुमने अब तक एक ।
भला यह कैसी अनुचित टेक ॥
अगर तुम आओ मेरे पास ।
दिखा दूँ, अपना मैं अभ्यास ॥

(३)

अभी बीते हैं दो रविवार ।
लिखे हैं पोथे जिन में चार ॥
किलर्की करते इतना काम—
करूँ; पर हाय ! न होता नाम ॥

(४)

कभी भारत-दुर्दशा निहार ।
मुझे होता है दुःख अपार ॥
कभी कामिनि किङ्किणि झनकार ।
श्रवण कर, मार[1] मारता मार ॥

---

१ कामदेव ।

(५)

कभी करुणा का बहता सोत।
कभी कटुता का चलता पोत॥
कभी मृदुता की तरल तरङ्ग।
उमड़ती कभी भक्ति की गङ्ग॥

(६)

हृदय का चित्र भाव उद्गार।
सभी का कविता है आधार॥
हुए जब अति प्रसन्न भगवान्।
तभी की कविता शक्ति प्रदान॥

(७)

बन गया मैं कविता का कूप।
फटकने लगा शब्द, ले सूप॥
नाप डाले ले गज़ सब छन्द।
न तो भी हुआ क़ाफ़िया बन्द॥

(८)

न महती अलङ्कार का भार।
न देखी रस की सुन्दर धार॥
भाड़ में झुकी भाव-भरमार।
मादगी है कविता का हार॥

(९)

व्याकरण-बिल्ले का सिर फोड़।
पिंगली-पिल्ले का धड़ तोड़॥
जानकारी की जान मरोड़।
कुदकती है कविता पर होड़॥

(१०)

पढ़ेंगे एक बार यदि आप ।
कहेंगे-"है यह व्यर्थ प्रलाप" ॥
"न भाषा शुद्ध न भाव-प्रधान" ।
यही है कविता की पहँचान ॥

(११)

नष्ट हो कविता का शृङ्गार ।
भ्रष्ट हो चाहे सारा सार ॥
छापना कर लो, पर, मंजूर ।
अर्ज़ है, यह हुजूर पुरनूर ॥

(१२)

नाम का मोटा छापा छाप ।
दिखाना मेरा काव्य-कलाप ॥
भेजना अङ्क अमूल्य पचास ।
पठाने हैं मित्रों के पास ॥

सजीव रोगों के अजीव नुसखे !!!

आजकल शारीरिक रोगों के साथ और भी कितने ही तरह के रोग बढ़ रहे हैं, जिनकी चिकित्सा न होने से देश की बड़ी हानि होने की सम्भावना है। इसी विचार से श्रीहत-नहीं नहीं-श्रीयुत बाबा अविद्यानन्दजी महाराज ने कुछ परीक्षित प्रयोग हमारे पास प्रकाशनार्थ भेजे हैं, जो यहाँ मुद्रित किये जाते हैं। आशा है, ये नुसखे रोगियों के लिए लाभकारी सिद्ध होंगे।

लीडरतोन्माद

निदान—यह बड़ा भयंकर रोग है, इसका वेग होने पर, रोगी के दिल-दिमाग़ क़ाबू में नहीं रहते। कभी रोगी आदमियों की भीड़ में चीख़ता है; कभी काग़ज़ पर कुछ घसीट-घसीट कर डाकघर के बम्बे में बहाता है; कभी तार बाबू को तंग करता है, और कभी सरकार के साथ जंग करता है। मरज़ ज्यादह बढ़ जाने पर कभी-कभी रोगी अपने घर, नगर से बाहर भी भाग जाता है और फिर वहाँ चीख़ता-पुकारता फिरता है।

चिकित्सा—लीडरतोन्माद के रोगी को कौन्सिल के कठघरे में बन्द कर देना चाहिये और उसे 'शोहरत' के शर्बत में, चन्दे की चाशनी मिला कर, प्रत्येक पाँच पल के पश्चात् चटानी चाहिये। अकर्मण्यता का चूर्ण भी हितकर होगा। ऐसा करने से दस-पन्द्रह वर्ष में उसे आराम हो जायगा। बाबा अविद्यानन्दजी इस नुसख़े की कितने ही बीमारों पर अनेक बार परीक्षा कर चुके हैं। सब नीरोग हो गये।

'ऐडिट-अइंग' या 'संपादन-संहार'

निदान—'एडिट-अइंग' अथवा 'सम्पादन-संहार' का रोगी दुनिया भर के झगड़े-बखेड़े लोगों को सुनाया करता है। 'लीडर-तोन्माद' और 'व्याख्यान-व्याधि' रोगियों को पिटते देख यह बुरी तरह रो पड़ता है! कभी किसी की प्रशंसा के पुल बाँधता है, तो, कभी किसी की निन्दा की नदी बहाता है। तिल का ताड़ और ताड़ का तिल बनाने में इसे बड़ी खुशी होती है। जब इसे ज़ोर का दौरा होता है, तो, बस, 'सुधार-सुधार' और 'स्वराज्य-स्वराज्य' बकना शुरू कर देता है।

चिकित्सा—'सम्पादन-संहार' आगन्तुक रोग है, इसलिए आयुर्वेदशास्त्र में इसका वर्णन नहीं है। इसका इलाज विदेशी चिकित्सा-पद्धति के अनुसार होता है। डाक्टर लोग इस रोगी को '१२५ ए' के एकुए में 'प्रिज़न-पिल्स' (क़ैद) या 'फाइन (जुरमाना) का फ़ास्फ़ोरस' मिला कर पिलाया करते हैं। कभी-कभी 'वी०पी० बहिष्कार-वटिका' का प्रयोग भी लाभदायक सिद्ध होता है।

'विकालत-व्रण'

निदान—यह मरज़ तो बहुत फैलता जाता है, छोटे-बड़े सब शहरों में इसके मरीज़ मिलते हैं। बड़ा संक्रामक रोग है। भारतीय विश्वविद्यालय लॉ लेक्चर की वारि-धारा बहाकर इस रोग को और भी बढ़ा रहे हैं। यमराज भी इस रोग को घटाने में मदद नहीं देते। विकालत-व्रण का रोगी कराहता बहुत है, इसे बात-बात में मीन-मेख निकालने की बुरी आदत पड़ जाती है! बीमार लोग रोज़ चार-पाँच घन्टे के लिए क़ानूनी शफ़ाखाने में जमा होते हैं। वहाँ एक की कराहट दूसरे को बहुत बुरी लगती है। कभी-कभी तो ये लोग क़ानूनी डाक्टर के सामने खड़े-खड़े खूब कराहते, चीखते और चिंघाड़ते हैं। मगर यह जीभों की लपालपी उसी वक्त तक

रहती है जब तक ब्रण में दर्द की शिद्दत रहती है, ज्यों ही दर्द कम हुआ त्यों ही फिर .गुर्राहट बन्द हो जाती है, और एक दूसरे के दर्द का शरीक बन जाता है। इन रोगियों में एक बात खास होती है, ये लोग खुद तो आपस में तड़क-भड़क करते ही रहते हैं, पर दूसरे अच्छे-भले आदमियों को लड़ते-झगड़ते और मर पटकते देख बहुत .खुश होते हैं। इस विषैले ब्रण के कारण अक्सर असत्य का ज्वर चढ़ आता है।

चिकित्सा—विकालत-ब्रण के रोगी को महनताने मधु में शुकराने का शर्बत मिला कर पिलाना चाहिये। 'मवक्किल-मरहम' का फाया रखने से तो बहुत जल्द फायदा हो जाता है। साधारण ब्रण के लिये 'पब्लिक-पुलटिस' भी कारगर हो जाती है। देशोद्धार की ठेकेदारी मिल जाने पर भी यह रोग शान्त हो जाता है। जहाँ तक हो, लोगों को इनके इस छूत के रोग से, दूर रहना चाहिए, क्योंकि यह उड़ कर लगने वाला मरज़ है।

'कविता-कण्डु' (खाज)

निदान—यह मरज़ भी बड़ा मूज़ी है, इसमें फँस कर रोगी घर का रहता है न घाट का। इस बीमारी में एक प्रकार की 'गुंगवाय' भी हो जाती है। मरीज़ उठता बैठता, सोता जागता यहाँ तक कि खाने और पाखाने में भी 'गुन-गुन' करता रहता है। अपनी करतूत को काग़ज़ के टुकड़ों पर अङ्कित देख मुँह फाड़कर खिलखिला पड़ता है। इस रोग का जल्द इलाज करना चाहिये।

चिकित्सा—'कविता कण्डु' के रोगी को सोने-चाँदी के पदकों को पीस-कर शोहरत के शहद के साथ चटाना चाहिए। कभी-कभी प्रशंसा-पत्रों की पुड़िया देने से भी लाभ होता देखा गया है। उपाधि का अवलेह तो इस व्याधि को तुरन्त दूर कर देता है।

'व्याख्यान-व्याधि'

निदान—यह रोग बड़ा भयानक है, रोगी हर वक्त कुछ न कुछ बड़बड़ाया करता है। हुक्का. सिगरट, शराब, जुआ, चोरी आदि देख-सुन कर तो रोगी को एक दम भयङ्कर दौरा हो जाता है, जो लाख चिकित्सा करने पर भी शान्त नहीं होता।

चिकित्सा—व्याख्यान-व्याधि के रोगी को 'गौरव-गिलोय' के काढ़े के साथ 'प्रशंसा-पर्पटी' खिलानी चाहिये। अकर्मण्यता का अर्क तो इस रोग के लिए बहुत ही लाभदायक है। कभी-कभी 'सर्व-श्रेष्ठता' का स्वरस भी बहुत हितकारी साबित होता है। सब औषधियाँ व्यर्थ सिद्ध होने पर, इस रोगी को '१४४' धारा की अमृत-धारा पिलानी चाहिये, बस तुरन्त आराम हो जायगा।

स्वर्ग की सीधी सड़क !!!

घूमता-फिरता मैं सीधा हृषीकेश के जंगलों में जा पहुँचा। देखता क्या हूँ, एकान्त टीले पर. एक बाबाजी समाधि लगाये बैठे हैं। वे अपने ध्यान में निमग्न हैं, उन्हें कुछ भी खबर नहीं कि संसार में क्या हो रहा है, और संसार में वह हैं भी कि नहीं। मैं बाबाजी के पास आध घन्टे बैठा रहा। इतने ही में, न जाने कब की लगी हुई उनकी समाधि टूटी। बाबाजी ने मेरी ओर बड़ी दया-दृष्टि से देखा, मैंने चरणस्पर्शपूर्वक उन्हें प्रणाम किया। वे बोले—

'बच्चा !—तुम कौन हो ?'

'महाराज !—मैं भी एक सांसारिक कीट हूँ।

'यहाँ कैसे आये ?'

'आपके दर्शनों को, लौकिक ताप से तप कर आत्मिक शान्ति के लिए।'

'नहीं,अभी तुम इस बखेड़े में मत पड़ो, संसार का काम करो।'

'महाराज !—मेरी आत्मा बड़ी अशान्त रहती है, कुछ ऐसे भ्रम हैं जिनका निवारण नहीं होता।'

'अच्छा, बैठो, मैं अभी पानी पीकर तुम्हारी शङ्काओं का समाधान करता हूँ—

कुछ ही देर बाद बाबा विचित्रानन्दजी ने पानी पीकर मुझसे कहा—'बोलो तुम्हारी क्या क्या शङ्काएँ हैं, एक-एक करके कहते जाओ।'

मैं—महाराज ! 'परोपकार' क्या है ?

बाबा—खूब आराम से रहना, और पाखण्ड पूर्वक स्वार्थ साधन करना।

मैं—'मुक्ति' कैसे प्राप्त होती है ?

बाबा—खूब धन कमाने से।

मैं—'स्वर्ग' कहाँ है ?

बाबा—'सिविललाइन्स' में और अङ्गरेजों की कोठियों में।

मैं—'नरक' किस जगह है ?

बाबा—हिन्दुओं के घरों में

मैं—'धर्म' क्या है ?

बाबा—संसार की सब से सस्ती और निरर्थक वस्तु।

मैं—'धर्म' कब पालन करना चाहिये ?

बाबा—मृत्यु के समय—जीवन समाप्ति में सिर्फ १० मिनट शेष रह जायँ, तब।

मैं—ऋषि मुनि कौन हैं ?

बाबा०—जिन्होंने ७५ फ़ीसदी नम्बरों से क़ानूनी और डाक्टरी परीक्षाएँ पास की हैं।

मैं—सबसे अधिक सत्यवादी कौन है ?

बाबा—कवि, सम्पादक और वकील बैरिस्टर।

मैं—मनुष्य-जीवन का उद्देश्य क्या है ?

बाबा—कमज़ोरों को सताना और बलवानों से दब जाना।

मैं—श्राद्ध किसका करना चाहिए ?

बाबा—गौरांग महाप्रभुओं का।

मैं—मर कर जीव कहाँ जाता है ?

बाबा—धन की ढेरी पर और मोह के मन्दिर में।

मैं—पाप किसे कहते हैं ?

बाबा—बिरादरी के विरुद्ध व्यापार को।

मैं—बुद्धिमान कौन है ?

बाबा—जो धूर्तता से अपना काम निकाल सके।

मैं—मूर्ख की परिभाषा क्या है ?

बाबा—सीधा हो, सज्जन हो और अपने हृदय के भाव सब पर सरलता से प्रकट करदे।

मैं—शुद्धता कहाँ है ?

बाबा—विहस्की के प्याले और होटलों के निवाले में।

मैं—आचार-विचार किसे कहते हैं ?

बाबा—उछल कर चौके में जाने और धोकर लकड़ी जलाने को।

मैं—जीवन की सफलता किसमें है ?

बाबा—ढोंग रचने और धूम मचाने में।

मैं—बहादुर कौन है ?

बाबा—जो अवसर आने पर जान बचा कर भागता है।

मैं—प्रतापी नरेश कौन है ?

बाबा—जो दीन प्रजा को सदैव पराधीन बनाए रक्खे।

मैं—नेता किसे कहते हैं ?

बाबा—जो सदैव अपने ही व्यक्तित्व का ध्यान रखता है, और अपनी ही बात चलाता है। लोकमत का तनिक भी आदर नहीं करता।

मैं—स्वराज्य कब मिलेगा ?

बाबा—जब भारत में एक भी हिन्दुस्तानी न रहेगा, सर्वत्र अङ्गरेज ही अङ्गरेज छा जायँगे।

मैं—आध्यात्मिक ज्ञान की सर्वोत्तम पोथी कौन सी है ?

बाबा—आल्हा-ऊदल के साँग, आधुनिक रामायण और भोंगा भजनीक का 'भजन-तमंचा'।

मैं—आर्यसमाज की 'पोप लीला' क्या है ?

बाबा—सन्ध्या-हवन, संस्कार और चोटी-जनेऊ।

मैं—वेदों को उचित आदर कहाँ दिया जाता है ?

बाबा—वैदिक यंत्रालय अजमेर के गोदाम और आर्यसमाजों की अलमारियों में।

मैं—इस समय वेदों की रक्षा करने वाले कौन हैं ?

बाबा—मुसलमान जिल्दसाज़।

मैं—वेदों का प्रचार कैसे हो सकता है ?

बाबा—आर्य-अख़बारों में नोटिस छपाने या बुकसेलरों की दूकानों से।

मैं—चुनाव के समय 'वोट' किसको देना चाहिए ?

बाबा—जो ख़ूब ख़ुशामद करे और नोटों की पोट पाकिट में पटक दे।

मैं—मिनिस्टर का सबसे बड़ा गुण क्या है ?

बाबा—सरकार की चापलूसी और आत्मगौरव का अभाव।

मैं—गुरुकुलों में किन्हें पढ़ाना चाहिए ?

बाबा—जिसके पिता वकील, बैरिस्टर, डाक्टर, एडीटर, लीडर, डिप्टीकलक्टर, मुंसिफ, प्रोफैसर, सबजज और जज न हों।

मैं—गुण कर्म स्वभाव से शादी किन्हें करनी चाहिए ?

बाबा—जिन्हें अपने जन्म के वर्ण से ऊँचे वर्ण की कन्या मिल सके।

मैं—दान का उचित अधिकारी कौन है ?

बाबा—जो अधिक से अधिक दाता की प्रशंसा और प्रसिद्धि करने में कुशल हो।

मैं—'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का क्या अर्थ है ?

बाबा—कहना बहुत और करना कुछ नहीं !!!

मैं—'घासलेटी साहित्य' क्या है ?

बाबा—नवयुवकों के उद्धार की अमोघ औषधि।

मैं—इसका सेवन किस प्रकार किया जाता है ?

बाबा—चाकलेटी चटनी के साथ।

मैं—लोगों की पद-लोलुपता कैसे दूर हो सकती है ?

बाबा—जलसों में सभापति की कुर्सी पर बैठने और अख़बारों में प्रशंसा छपाने से।

मैं—ईश्वर से भी बड़ी दुनिया में कौन सी चीज़ है ?

बाबा—'चन्दा ! चन्दा !! चन्दा !!!'

मैं—सच्ची 'कर्मवीरता' क्या है ?

बाबा—जो ख़तरे से ख़ाली हो।

मैं—समाचारपत्रों का मुख्य उद्देश्य क्या होना चाहिए ?

बाबा—ग्राहक संख्या बढ़ाना और रुपया कमाना !

मैं—'संस्था' किसे कहते हैं ?

बाबा—बिना पूँजी की दूकान को।

मैं—यशस्वी चिकित्सक के क्या लक्षण हैं ?

बाबा—जो अपने जीवन में कम से कम सौ रोगियों को यमपुर पहुंचा चुका हो।

मैं—सिद्धहस्त सम्पादक किसे कहना चाहिए ?

बाबा—जिसे लेखों की चोरी करने में ज़रा भी शर्म न मालूम पड़े।

मैं—म्युनिसिपल बोर्ड क्या है ?

बाबा—निकम्मे मेम्बरों का 'पिंजरापोल'।

मैं—डिस्ट्रिक्ट बोर्ड क्या है ?

बाबा—गाँवों में ज़मीदारों की पंचायत।

मैं—और महाराज ! कौंसिल ?

बाबा—वकील-बैरिस्टरों का 'डिबेटिंग क्लब'

मैं—किसी पुण्य-कर्म करने का सबसे अच्छा अवसर कौनसा है।

बाबा—दीवानी और फ़ौजदारी दोनों कचहरियों की तातीलें हों—तब।

मैं—लीडर लोगों का कार्यक्षेत्र कहाँ तक है ?

बाबा--जहाँ-जहाँ मोटर का पहिया आसानी से जा सके, और
बढ़िया फल खाने को मिल सकें।

मैं--हिन्दी-प्रचार कैसे होगा ?

बाबा—अगरेज़ी लिखने, पढ़ने और बोलने से।

मैं—आनरेरी लोग कौन हैं ?

बाबा—जो नियत वेतन न लेकर भरपूर भत्ता वसूल करते रहते हैं।

मैं—जीवन-दान किन्हें देना चाहिए ?

बाबा—जो संसार में किसी काम के लायक़ न रहें।

मैं—छायावाद की सर्वोत्तम कविता कौनसी है ?

बाबा--जो स्वयम् लिखने वाले कवि की समझ में भी न आवे।

मैं--भारतवासियों के लिए सबसे अच्छे अस्त्र-शस्त्र क्या हैं ?

बाबा—सेठ साहूकारों के लिए 'पियानो' और 'हारमोनियम'।
पढ़े लिखों के लिए प्रस्तावों की 'पिस्तौल' और
रज़ोल्यूशनों के 'रिवालवर'।

महाराज, आज आपने मेरी संशय-निवृत्ति करदी, अब मेरी आत्मा को परम शान्ति प्राप्त हुई है। मेरे हृदय की उद्विग्नता दूर हो गई ! आप मुझे जो आदेश देंगे, अब मैं वही करूँगा। धन्य गुरुवर, धन्य ! आज आपके दर्शन कर मेरे नेत्र, और उपदेश सुनकर ये कान पवित्र हुए। मैंने आपके पाद-पद्मों की पूजा कर अपने को धन्य समझा। यह सुनकर बाबा विचित्रानन्दजी बोले —'जाओ, बच्चे अब अपने घरबार की सुध लो और हमारे बताये हुए विधान द्वारा लोक-परलोक साधो। बस, तुम इस जीवन में ही मुक्त हो जाओगे, और सदेह सीधे स्वर्ग को चले जाओगे। मैंने तुम्हें क्रिया ही ऐसी बतादी है। अच्छा, अब जाओ, हम समाधि लगाते हैं।'

बिरादरी पर 'बम्बार्डमेंट'

हज़ार लानत ! लाख लानत !! यार ! इस बिरादरी पर करोड़ लानत ! तबाह कर दिया ! मुल्क पर मुसीबत ढा दी ! फिर भी यह कम्बख़्त प्लेग के कीड़ों या नौकरशाही के आतङ्क की तरह बढ़ती ही चली जाती है। पकड़ो, मारो इस चुड़ैल को बरबाद करदो। देखना कहीं साँस चलती बाक़ी न रह जाय।

× × × ×

भाई, बड़े नाराज़ हो, आख़िर इस बिरादरी बुढ़िया ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ? इस बेचारी से क्या ख़ता बन पड़ी है, जो तुमने उसके क़तलेआम की ठान ली। कोई अपराध भी तो हो, कोई उस ग़रीबनी का क़सूर भी तो बताया जाय ? या यों ही पायजामे में से निकले पड़ते हो।

× × × ×

बस, चुप रहो, तुम्हें क्या समझावें ? तुम तो समझते हो नहीं, खुदा ने इतनी अक़्ल ही नहीं दी। मारो, मारो जहाँ कहीं भी बिरादरी मिले, मारो! ज़रा भी रियायत या हिमायत न करो। मारो, मारो, उस चामुण्डा का चुट्टा पकड़ लो !

× × × ×

खबर नहीं है, अब हम 'जात-पाँत-तोड़कमण्डल' के सदस्य हो गये हैं। बिरादरी बिल्डिंग को बरबाद करने की कसम खा चुके हैं, क़ौमियत का किला तोड़नेका बीड़ा उठा चुके हैं। बस, मारो, मारो इस बिरादरी-बिलौटी को मारो। इस कुलटा ने सारे मुल्क को तबाह कर दिया !

अरे यार, छोड़ो इस अनर्गल आलाप को। तुम्हारी शक्ति में हो तो मारो, मारो और ज़रूर बिरादरी बुढ़िया को मारो। पर, सारा ज़ोर—सारा जोश और सारा आवेश इसी वक़्त क्यों खर्च किये डालते हो? थोड़ा फिर के लिये भी रहने दो।

× × × ×

ओ निर्बल आत्मा! तुम क्या ताना देते हो? मजाक उड़ाते हो? याद रहे, हम 'जात-पाँत-तोड़क मण्डल' के मेम्बर हैं—बिरादरी की बुनियाद हिला देंगे और उसे मिट्टी में मिला देंगे। समझे, तुम से भीरु भला क्या कर सकते हैं? थोड़े दिन ज्यों-त्यों जीवित रह कर केवल मर सकते हैं। हम बिरादरी को नष्ट करके दम लेंगे। यह एक आर्यवीर की दृढ़ प्रतिज्ञा है।

× × × ×

अच्छा, मगज क्यों चाट रहे हो, जो मन में आवे, करना। उबले क्यों पड़ते हो, कुछ करके तो पहले दिखाओ। हाँ, खबर है कि नहीं? आज दोपहर के ग्यारह बजे से चुंगी का चुनाव है। बोलो किस को वोट दोगे? किसको अपने 'वार्ड' से मेम्बर बनाओगे?

× × × ×

किसको—यह तुमने खूब कही! भाई, मैं तो महीने भर पहले लाला लपचूलाल से वादा कर चुका हूँ। कोई लाख बके, पर, मैं तो अपना 'वोट' उन्हीं को दूँगा। आर्यवीर एक बार प्रतिज्ञा करता है, बात को दो दफ़ै नहीं कहता।

× × × ×

अच्छाजी, लाला लपचूलाल को? और किसी को नहीं। मगर 'वार्ड' से तो और भी कई बड़े सुयोग्य सज्जन उम्मेदवार हैं, उन्हें अपना वोट क्यों नहीं देते? वह तो जनता की सेवा भी खूब करेंगे। अच्छा, मैं समझ गया, समझ गया, लाला लपचूलाल

आपकी बिरादरी के हैं, इसीलिये उनके लिये आप अपनी राय देंगे, इसीलिये उनसे वादा कर चुके हैं। पर, क्या बाबू विनायक सिंह शास्त्री से उनकी योग्यता अधिक है? भाई, योग्यता देख कर राय दो। बिरादरी पर मत मरो।

+ × × ×

बस, भाई बहुत बातें न बको. तुम से पहले ही कह दिया कि अब हम बेहूदी बिरादरी को कभी जिन्दा न छोड़ेंगे, उसके दाँत तोड़ेंगे और नेत्र फोड़ेंगे। आई कहीं की बिरादरी चुड़ल !!! लानत बिरादरी को! धिक्कार इस दुष्टा को !! यार ! लाला लपचूलाल से तो हमने जात-पाँत तोड़क मण्डल का मेम्बर बनने से पहले ही प्रतिज्ञा करली थी। समझे कि नहीं ?

× × × ×

अच्छा, तुम्हीं बताओ, तुम्हीं बताओ। क्या अब मैं प्रतिज्ञा-भंग का पाप अपने मत्थे मढ़ूँ? क्या इस गुनाह-ए-अज़ीम को अपने सिर पर लूँ? एक दृढ़-प्रतिज्ञ व्यक्ति प्रतिज्ञा-पालन के आगे, भला किसी की योग्यता अयोग्यता का कभी ध्यान कर सकता है ?

× × × ×

बेशक, लाला लपचूलाल 'मण्डल की मेम्बरी' से पहले, मेरी बिरादरी के थे, पर अब नहीं हैं। अब तो, महाशय ! मेरी कोई बिरादरी ही नहीं, मेरा किसी बिरादरी से लेशमात्र भी सम्बन्ध नहीं रहा ? अगर मैं अब लाला लपचूलाल को अपनी वोट दूँगा तो बिरादरी की वजह से नहीं, प्रत्युत प्रतिज्ञा-भंग दोष से बचने के कारण। एक धर्मवीर को ऐसा करना ही चाहिये ! ऐसा होता ही आया है। क्यों न ?

+ × × ×

गोली मारो 'मेम्बरी' को और डेली डालो 'वोट' पर। कहो, मालूम है कि नहीं—तुम्हारे प्रमोद ने इस साल बी०ए० पास कर लिया! सैकिण्ड डिवीज़न में आया है।

× × × ×

वाह! वाह!! दोस्त, और हुआ सो हुआ, यह खूब सुनाई, मुबारक! मुबारक!! परमात्मा उसको चिरायु करे। अच्छा, कब खबर आई, वह तो ग्वालियर के विक्टोरिया कालेज में पढ़ता था न—हाँ-हाँ, कल ही तो आगरा से एक मित्र का तार आया है।

× × × ×

वाह, यह खूब खुशखबरी सुनाई। अच्छा, अब प्रमोद का विवाह कर डालो। अब तो उसकी आयु २२ साल की हो गई, इधर बी० ए० भी हो गया। फिर क्या देर-दार है। बिरादरी की लड़की बड़ी सुशीला और सुशिक्षिता है, मगर आप तो बिरादरी को मानते ही नहीं, बिरादरी में उसकी शादी क्यों करने लगे?

× × × ×

भाई, सच समझना, बिरादरी का नाम सुनकर मेरी आँखों से खून के फ़ब्बारे छुटने लगते हैं, उसका ज़िक्र आते ही क्रोध से चेहरा तमतमा उठता है। मारो, इस कम्बख्त बिरादरी को, भाइयो, ज़िन्दा मत छोड़ो। जहाँ मिले मारो, जब मिले मारो। आई कहीं की चुड़ैल, भुतनी, डाकनी, पिशाचनी।

× × × ×

यार, तुम भी बड़े खब्ती हो, 'जात-पाँत तोड़क मण्डल' के मेम्बर क्या बने क़यामत आगई! पूछते कुछ हैं, बकने कुछ लगते हो। ज़िक्र प्रमोद के विवाह का था, व्याख्यान झाड़ने लगे बिरादरी पर। ऐसा भी क्या जोश, इतना भी क्या 'रिफ़ार्म'?

'पूछें अगर ज़मी की कहें आस्माँ की बात।'

× × × ×

'प्रमोद का विवाह ?'-हाँ प्रमोद का विवाह ! भाई, ये घर वाले बड़े कम्बख़्त हैं, बुढ़िया बड़ी ज़िद्दन है, वालिद की न मानें तो आफ़त, औरत की न सुनें तो क़यामत ! भाइ घर से निकलने की धमकी देता है और भतीजा असहयोग करने को तैयार है। बहिन ने साफ़ इनकार लिख भेजा है। बुआ का अभी कोई जवाब नहीं आया।

× × × ×

वही पागलों का सा बकवाद ! अरे भाई, तुमने इतनी बातें कह दीं, पर इन सबका मतलब क्या हुआ ? नतीजा क्या निकालें ? आख़िर कुछ बात भी तो हो। तमाम ख़ानदान की तो समालोचना, पर असली बात का ज़िक्र भी नहीं। मैं तो प्रमोद के विवाह की बाबत पूछ रहा था। कब करने का विचार है ?

× × × ×

यार यही तो मैं भी कह रहा हूँ, घर वालों ने नहीं माना, उसकी सगाई कर ली और इसी बिरादरी में करली, जिसका मैं घोर शत्रु हूँ। भाई, जब तक ये बुड्ढे रहेंगे किसी को कुछ नहीं करने देंगे। देखो, बुढ़िया प्राण देने को तैयार होगयी। 'मेरी ज़िन्दगी में बिरादरी से बाहर विवाह ! शिव ! शिव !! राम ! राम !!' पिताजी को तो कुछ पूछो ही नहीं, वह तो मुझे पल्ले सिरे का पागल और अव्वल दरजे का उल्लू समझते हैं।

× × × ×

अच्छा तो, प्रमोद की सगाई हो गई, और बिरादरी में ही हो गई ! अह ह ह ह ह ! (क़हक़हा लगाता है) ओहो, बिरादरी में ही। अह ह ह ह ह ! (फिर क़हक़हा लगाता है) दोस्त, सगाई

तो गुप चुप कर ली, कहीं बारात के वक़्त मत भूल जाना, आँखों पर ठीकरी न रख लेना।

× × × ×

हँस लो; यार हँस लो। तुम भी हँस लो !! दो लड़कियाँ और तीन लड़के अभी और कुआँरे हैं। इनकी शादी हुई फिर देखना बिरादरी का कैसा सिर फोड़ता हूँ-उसके कैसे दाँत तोड़ता हूँ ? तलाश करने पर भी तब कहीं बिरादरी का कोई निशान भी मिल जाय तो मुझसे कहना। परमात्मा ने मुझे पैदा ही इस काम के लिये किया है। मैं 'जात-पाँत तोड़क मण्डल' का मेम्बर ही इस-लिये बना हूँ। बस ! बिरादरी का बलिदान मेरे हाथ ही लिखा है।

वैदिक बखेड़ा !

वाह जनाब ! वाह, ऐसी पोपलीला तो सनातनधर्म में भी थी, अगर यही मालूम होता तो हम उधर से इधर क्यों 'धर्मबद्-लौअल' करते ? बढ़ा लिया सिर पर बालों का गुच्छा और लटका लिये गले में तीन तार ! बस बन गये 'शिखा-सूत्रधारी।' और होगये हिन्दू !!

× × × ×

'अरे यार ! क्या बड़बड़ा रहे हो ? चोटी-जनेऊ पर यह क़यामत क्यों ढा रहे हो ? इन्हें ज़िन्दा भी छोड़ोगे कि नहीं ?' 'भाई ज़िन्दा छोड़ने की कौनसी बात है। अच्छा, तुम्हीं बताओ इनके रखने मे लाभ ? फ़ायदा ?'

× × × ×

'फ़ायदा क्यों नहीं है, ज़रा विचारो तो !' 'बस रहने दो विचार लिया, अब ये तीन तार ही हमें हमारे फ़र्ज़ की अदायगी बताएँगे ? इस बालों के गुच्छे से ही जिस्म की हिफ़ाज़त होगी !! क्या पोपलीला है ! कैसा ढोंग है !!'

× × × ×

"चोटी बिजली से जिस्म की हिफ़ाज़त करती है !!" हहहह ! 'कैसा अजीब साइन्स है ! कितनी दबंग दलील है ? "चोटी और बिजली !" वाह यार तुमने तो अक़्ल का दिवाला निकाल दिया —तो गोया ईसाई-मुसलमानों पर रोज़ बिजली पड़ती रहती है, और हाँ, संन्यासियों के सिर पर भी तो चोटी नहीं होती। भला ये लोग वज्र-प्रहार से कैसे बच सकते होंगे, इसे ज़रा समझाओ

तो ? समझाओगे क्या ख़ाक ?—सब पोपलीला ! सब ढोंग !! सब प्रपंच !!!'

× × × ×

"यह लो अपना जनेऊ और वह पड़ी है चोटी ! हमें ऐसी पोपलीला से कोई सरोकार नहीं। इस ढोंग से किसी प्रकार का वास्ता नहीं !" यार ! हो तुम भी बड़े मिराक़ी ! ऋषि दयानन्द की बात भी नहीं मानते ! उन्होंने भी तो शिखा-सूत्र धारण करने की शिक्षा दी है।"

× × × ×

अरे भाई, दी होगी, हमने तो ऐसी पोपलीला न कालेज के कोर्स में पढ़ी और न स्कूल की किताबों में। यह लो 'शेक्सपीयर' के ड्रामे और वह पड़े हैं 'बेकन' के निबन्ध ! अगर इनमें कहीं भी चोटी-जनेऊ निकाल दो तो तुम्हारे चेले बन जायँ। आज ही से बालों का गट्ठर सिर पर लादे फिरें और अभी से बिड़ला मिल का सूत मारे शरीर से लपेटना शुरू करदें।

× × × ×

हाँ, लिखदी होगी स्वामीजी ने भूल से यह पोपलीला ! या जोड़ दिया होगा 'स्वार्थी' पण्डितों ने अपनी ओर से यह प्रसंग ! अगर इसे ठीक भी मानलें तब भी तो स्वामीजी साफ़-साफ़ कह गये हैं कि "वैयक्तिक कार्यों में प्रत्येक जन स्वतन्त्र है, और सत्य को ग्रहण करने तथा असत्य को त्यागने के लिए सदैव सब को उद्यत रहना चाहिए।" सो हम उद्यत हैं, और जनेऊ चोटी व्यक्तिगत कार्य होने से हम उन्हें धारण करने या न करने में स्वतन्त्र हैं।

× × × ×

अरे यार ! तुमने 'मिल्टन' और 'शेक्सपीयर' क्या पढ़े सारा दिमाग़ ही ख़ाली कर डाला ! कर्म-धर्म को ही जवाब दे दिया !! ऐसी भी क्या तार्किकता, इतना भी क्या शुष्कवाद ? 'चोटी-जनेऊ

बिना धारण किए, न तुम आर्य्य रह सकते हो और न हिन्दू कहा सकते हो। कुछ खबर है कि नहीं? सिद्धान्त समझते हो या योंही?

× × × ×

हाँ-हाँ सब खबर है, सब समझते हैं। बाल की खाल खींच डाली है! बच्चे! हमें क्या समझाओगे? देखो जब संध्या हवन छोड़ कर हम आर्य्य रह सकते हैं, वेद-शास्त्र बिना पढ़े 'वैदिक' कहला सकते हैं, बिरादरी में बिचरते हुए दृढ़ सदस्य समझे जा सकते हैं, छूत-छात के उपासक होते हुए भी 'समाज-संशोधक' का सार्टीफिकट हासिल कर सकते हैं तब चोटी-जनेऊ त्यागने पर 'आर्य' या 'हिन्दू' न रह सकने की आपने खूब कही? वाह, दोस्त! वाह! क्या कहने हैं।

× × × ×

हो यार तुम भी बड़े मग़ज़चट! सीधी-साधी बात बताने पर भी व्याख्यान झाड़ने लगते हो। ऐसा भी क्या तर्क और इतनी भी क्या दलील। वेद-शास्त्रों को भी नहीं मानना! उनमें लिखे शिखा-सूत्र को भी न धारण करना और फिर भी 'आर्य' और आर्यसमाज के सदस्य! तुम्हारी अक़्ल है कि कोल्हू की शक्ल? तुम 'वैदिक' हो या 'तपैदिक'?

× × × ×

आए कहीं के वेदों के व्याख्याता और शास्त्रों के आचार्य? मानो सब काम वेदों का पाठ करके ही करते हैं। बात-बात में वेद, खाने में वेद, पीने में वेद, सोने में वेद, जागने में वेद, रोने में वेद, हँसने में वेद। वेद क्या ठहरे आलू का शाक हो गये। मानो बिना वेद के कोई काम ही नहीं करते। बिना शास्त्रों के श्वास तक नहीं लेते।

× × × ×

अच्छा, बताओ तुम्हारी कमीज के कफों और बटनों का किस वेद में वर्णन है ? फ़ौण्टेनपेन रखना किस शास्त्र में लिखा है ? फ़ैल्टकैप कौनसी स्मृति के अनुसार धारण करते हो ? मोटर में सवारी करने का कौनसे ऋषि ने आदेश दिया था ? पतलून का कहाँ विधान है ? बोलो, बताओ, चुप क्यों हो ?

× × × ×

किसी ऋषि ने नहीं, किसी वेद ने नहीं, किसी शास्त्र ने नहीं, फिर यह सब वेद-विरुद्ध कर्म हुए या नहीं ? अब तुम ही बताओ तुम 'आर्य' हो या और कुछ। वैदिक हो या 'तपैदिक़' ?

× × × ×

जब आप ऐसे अवैदिक कृत्य करके भी आर्य' रह सकते हो, तो, चोटी-जनेऊ त्याग कर हम क्या आर्य-समाज के सदस्य नहीं रह सकते ?—भाई फ़र्क कुछ भी नहीं है, हम लिखे को नहीं मानते, तुम बिना लिखे को करते हो। क्रियाएँ दो सही, परन्तु परिणाम एक है। बोलो, समझे कि नहीं ? आई आपकी औंधी अक़्ल में कि नहीं ?

× × × ×

भाई, सच समझना, तुम इतने बूढ़े हो गये पर अभी वैदिकता का तत्व तुम्हारी समझ में न आया, लो सुनो, हम समझाते हैं, कान खोल कर सुन लो ! देखो, वेदों के नाम लेते रहो और ऋषियों का गुणगान करते रहो। बस, फिर चाहे कुछ करो या न करो, चोटी रक्खो, या न रक्खो, हवन करो या न करो, संध्या के लिये भी कुछ कुछ ऐसा ही समझो। मगर वेदों की गवाही और ऋषियों की दुहाई न भूलो। बस, बने बनाये वैदिक और पके पकाए आर्य हो। धर्म की सड़क पर दौड़े चले जाओगे, कोई रोकने टोकने वाला कहीं नहीं मिलेगा।

× × × ×

हाँ, एक बात इनसे भी बढ़ कर है, वेद-शास्त्रों से भी ऊँची है, धर्म से भी आगे है, उसे भी सुन लो, वह है–'चन्दा'! अगर चन्दा देते रहे तो फिर सारे बन्धनों से उसी प्रकार मुक्त हो जाओगे जिस प्रकार गयाजी में पिण्ड दान देने से हिन्दू श्राद्धादिक के बखेड़े से बच जाते हैं।

× × × ×

भाई, वेद-शास्त्र और ऋषि-मुनि तो स्मरण मात्र से ही प्रसन्न हो जाते हैं, रहा 'समाज' सो उसकी आँखें चन्दे की चाँदनी से चौंधिया दो। बस फिर न कोई किसी की चोटी टटोलेगा और न कोई किसी के गले में हाथ डालेगा! सब खुश हो जायँगे, यह भी खुश और वह भी खुश। मन्त्री खुश उपमन्त्री खुश और सभापति साहब खुश !! बाकी रही न कुछ हुश फुश !!!

*

सड़ियल सम्पादक

भाई, सचमुच जो मजा 'सम्पादकी' में है, वह संसार के साम्राज्य में नहीं है। बैठ गये कुर्सी पर और चलाने लगे क़लम! गवर्नर हो या वायसराय, बादशाह हो या फ़कीर, जज हो या बैरिस्टर, डिपुटी हो या कलक्टर—सब पर सम्पादकों की टेढ़ी-तिरछी, उलटी-सीधी, ओंड़ी-भौंड़ी क़लम चलती ही रहती है।

× × × ×

कोरी 'क़लम घिसौअल' हो सो नहीं, घर में चिलकइयों के पहिये भी खूब घूमते हैं। स्वार्थ का स्वार्थ और 'परमार्थ' का 'परमार्थ!' चुपड़ी और दो दो!! या यों कह लीजिये कि 'खाना और गुर्राना!' हथेली गरम करना, पाकिट भरना और लोगों को खरी-खोटी सुनाना!!! सचमुच ऐसी सुख-मूल 'सम्पादकी' जिस जन्तु की क़िस्मत में बदी हो, वह धन्य है, हज़ार बार धन्य है!! और लाख बार धन्य है!!!

× × × ×

यार! ज्यों-ज्यों तुम 'सम्पादकी' की स्तुति करते जाते हो, त्यों ही त्यों मेरे सूखे मुँह में पानी उरता आता है, उत्सुकता का दरिया उमड़ता जाता है। भाई, जिस प्रकार बने—जैसे भी हो सके, मुझे इस सम्पादकीय कुर्सी पर बिठा दो। मैं तुम्हारा जन्म-भर गुणगान करूँगा—मरने पर मेरी चिता से भी कृतज्ञता की लपलपाती लपटें निकलेंगी। तनुख़ाह खूब मिलती है न, खूब! ठीक-ठीक बताना!

× × × ×

अरे भाई ! तुम्हें सम्पादकीय श्रेष्ठता क्या समझाई, जान को आ गये, कान कतरने लगे। भला ऐसा भी क्या शौक ! इतनी भी क्या उजलत !! याद है, जहाँ गुल होते हैं वहाँ खार भी होते हैं। जहाँ नेकी है, वहाँ बदी भी है। जहाँ गुण हैं वहाँ दोषों की भी कमी नहीं दिखाई देगी। तुमने सम्पादकी के लिये मुँह तो बा दिया—मन तो चला दिया, मगर '१५३ अ' की भी कुछ खबर है ? इस 'हौआ' की भी कभी याद आई है ?

× × × ×

"१५३-'अ' का हौआ कैसा ?"—"हौआ यही कि किसी दिन लिख दिया कुछ आँय बाँय-शाँय और बिगड़ गया दिमाग़ तो बस हो गये 'गुलटंग !' चलो जेल को, और पीसो चक्की ! बटो रस्सी और कूटो धान ! पता है बच्चू ! उस वक़्त तुम्हारी सारी कुड़मधूँ बोल जायगी। सारी फुलावट फूले लिफ़ाफ़े की तरह फटाक से फिट्ट हो जायगी और सम्पादकी की चलती गाड़ी भर्र से अटक जायगी। तब क्या करोगे ? उस वक़्त कैसी गुज़रेगी ? कुछ है खबर ?"

× × × ×

सो क्या बात है ? इसमें क्या हरज है ? हमें महाकवि श्रीशङ्करजी की कविता की एक टाँग याद रह गई है, सुनिये—

"पाय करनी का फल जेल में गये तो भट्ट !
तोल घट जायगी पै मोल बढ़ जायगो।"

जेल जाकर शरीर भले ही कुछ कम हो जाय, तोल भले ही कुछ घट जाय, पर मोल बिना बढ़े न रहेगा। बिना जेल-यात्रा के तो कोई सम्पादक होता ही नहीं। हज़रत ! मोल के आगे तोल को कौन पूछता है ? तोल कम और मोल ज्यादा इससे बढ़िया दूसरी कौनसी बात होगी।

× × × ×

"जेल से छूटने के दिन, जिस समय, मेरा जयपद जुलूस निकलेगा उस दिन बस, आनन्द की गंगा उमड़ पड़ेगी। मेरी देश-सेवा के बखान से वायुमण्डल विलोडित हो जायगा।"

× × × ×

अच्छा तो, लो! सम्पादकी के लिये तैयार हो जाओ, जब तुम्हारी ऐसी असीम अभिलाषा है, तो उसे रोक कौन सकता है? बस! उठो-उठो, जाओ बाज़ार को और लाओ रंगीन पैंसिल और छोटी क़ैंची! बस, सब काम हो जायगा—किसी अख़बार में भी जगह मिल ही जायगी।

× × × ×

"तो क्या सम्पादकी के लिये मुझे कुछ पढ़ना पड़ेगा, तय्यारी करनी होगी, पुस्तकों के पन्ने उलटने-पलटने पड़ेंगे?"

× × × ×

यार! तुम तो बड़े मग़ज़चट्ट हो, फ़िज़ूल बातें बनाकर जान परेशान करते हो। यह लो 'रंगीन पैंसिल' और वह उठालो 'छोटी क़ैंची।' बस बन गये सम्पादक और हो गये 'एडीटर'। *

+ × × ×

"अच्छाजी, 'क़ैंची' और 'पैंसिल' ने मुझे सम्पादक कैसे बना दिया?—इनमें क्या करामात है? ज़रा समझाइये तो सही! बतलाइये तो सही!!"

× × × ×

"कहा न तुम बड़े 'मग़ज़चट' हो - पल्ले सिरे के बातून और अव्वल नम्बर के कुतर्की हो।"

× × × ×

"अरे, मामूली सी बात है, उसे सुनलो और दिल पर उसकी तसवीर खींच लो। देखो, जिस किताब या पत्र में तुम्हें कोई अच्छी बात दिखाई दे उसी पर सुर्ख़ निशान लगा देना, क़ैंची से

काट लेना और अपने अखबार में छपा देना—इसमें ज़रा भी संकोच न करना, बस, बन गये सम्पादक !! कहो, बने कि नहीं ?

× × × ×

'ओ हो ! इसलिए 'क़ैंची' और 'पैंसिल !!!' धन्य है, यह तो आपने सम्पादकीय सदन में प्रवेश करने की 'रायल-रोड' बतादी ! वाह ! इसके लिये मेरा मुँह आपके चरण चूमना चाहता है। जरा क़दम बढ़ाइये, मैं 'बोसा लूँ।'

× × × ×

हाँ, अभी पूरी बात तो सुनलो, तारीफ़ के पुल पीछे बाँधना। देखो, जिस अखबार या किताब से कोई बात अपने अखबार में छापनी हो तो उसका नाम देना—लेखक का ज़िक्र न आने देना—

× × × ×

"नाम दे दिया तो............"—"तो क्या तुम्हारा सिर ! जब दूसरे का नाम ही छाप दिया तो तुम्हारी उसमें क्या खाक कारगुज़ारी रही ! तुम्हें उसके लिये रक्खेगा कौन और देगा क्या ?"

× × × ×

ओ हो, यह तो आपने ऐसी सुन्दर सुविधि बताइ कि मैं मुहूर्त्तमात्र में, सकल शास्त्र-सागर, पूर्ण पुराण-पुष्कर और विश्व-वेद-वारिधि बन सकता हूँ। पोलिटिकल प्रांगण का पहलवान और साहित्य-समर का महारथी पद पा लेना तो, अब मेरे लिये साधारण-सी बात हो गई। धन्य, गुरुदेव ! धन्य ! धन्य, आचार्य, धन्य !

× × × ×

अच्छा तो, लीजिये अब जाता हूँ और सम्पादकीय जगत् में क्रान्ति करता हूँ ! अब आप 'केशव', 'विहारी', 'भूषण', 'तुलसी' की टक्कर की कविताऐं मेरे पत्र में शीघ्र ही देखेंगे। 'रवीन्द्रनाथ

ठाकुर' से बढ़िया शायरी हो तो मानिये नहीं तो नहीं—देशबन्धु और लोकमान्य, लालाजी और बनर्जी, गोखले और दादाभाई सब की आत्मायें अब मेरी पैंसिल के प्रभाव और कतरनी की करामात से, समाचारपत्रों के कालमों में कूदने लगेंगी। कूदेंगी वह और बड़ाई मिलेगी मुझे। क्या खूब !

× × × ×

गुरुदेव ! आपने विधि ही ऐसा बता दी. विधान ही ऐसा कर दिया, बहुत अच्छा, आज्ञा दीजिए, जाता हूँ, आपके आदेश का पालन करूँगा। अपने सुशील शिष्य की कमर पर सदैव हित का हाथ रक्खे रहिये—अच्छा, प्रणाम !

× × × ×

हाँ जाओ, भगवान् तुम्हारा भला करे और तुम अभी से सफल सम्पादक बन जाओ।

————

अड़ियल उपदेशक

अच्छा, आप सभा के वैतनिक उपदेशक हैं, हूँ—तो, आप वैतनिक हैं ! अच्छा, आपको तनुख़ाह मिलती है !! बहुत ठीक. समाज-मन्दिर में ठहरिये, वही आराम कीजिए, मुझे अब और काम करने हैं ।

× × × ×

मन्त्री जी समाज-मन्दिर में तो कन्या-पाठशाला होती है, वहाँ से तो मैं आया ही हूँ, चपरासी ने कहा—'स्थान नहीं है ।' आपके यहाँ ही ठहर जाऊँगा, दो दिन तो रहना ही है ।

× × × ×

नहीं जी, आप जाइये तो सही, चपरासी खुद अपनी कोठरी में आपको ठहरावेगा । लाइये, मैं चिट्ठी लिखे देता हूँ । वही आपके भोजन का प्रबन्ध भी कर देगा ।

× × × ×

अच्छा, वही कर देगा, जो आज्ञा, (खुर्जी कंधे पर लाद कर और बिस्तर बग़ल में दबा कर) वहीं जाते हैं, हमें तो कहीं पढ़ना । हाँ, प्रचार का प्रबन्ध और कर दीजिये ।

× × × ×

आपने सुना नहीं, मुझे काम है, मैं बाहर जा रहा हूँ, शाम तक लौटूंगा । रात के नौ बजे के लगभग प्रचार-विचार भी देखा जायगा । अच्छा अब देर होती है । नमस्ते ।

× × × ×

चपरासीजी, नमस्ते । लो, भाई, फिर तुम्हारे पास ही आना पड़ा । मन्त्रीजी ने कहा है—'वहीं ठहरो' ।

× × × ×

ठहरेंगे कहाँ मेरे सिर पर ? अब में चन्दा वसूल करने जाऊँ या आपको ठहराने का प्रबन्ध करूँ ? अच्छा, बताइये आप कहाँ से आये ? कैसे आये ? कब आये ? कितने दिन के लिये आये ? कहाँ जायँगे ? किस गाड़ी से जायँके ?—और, हाँ—प्रमाणपत्र ?

× × × ×

महाशयजी, हम सभा के उपदेशक हैं। दो दिन ठहरेंगे, प्रचार करने आये हैं, यहाँ से कानपुर जायँगे। देखिये, यह आपके लिये मन्त्रीजी की चिट्ठी है।

× × × ×

अच्छी बात है, मेरी उस कोठरी में ठहर जाइये. तख्त पर कपड़े बिछा लीजिये, देखना, मेरी चारपाई का बिस्तर इधर-उधर न हो, आटे दाल की मटकी और मसाले की डिबिया न लुढ़क-पुढ़क हो जाय। जूते बाहर ही उतार देना, क्योंकि वह मेरी रोटी बनाने की जगह हैं।

× × × ×

हाँ-हाँ जी, सो क्या हम कोई मूर्ख हैं, आखिर तो उपदेशक ठहरे, ऐसी असावधानी क्यों करने लगे। हाँ, महाशय! तो आपका शुभ नाम ? आप कितने दिन से इस समाज-मन्दिर में हैं ?

× × × ×

आपको मेरे नाम-धाम से क्या ? बोलिये भोजन की बात ? मुझे देर होती है, जल्द बतलाइये, चन्दा माँगने जाना है।

× × × ×

बात क्या ? भोजन करेंगे, भला यहाँ क्या चीज़ अच्छी बनती है ? मिठाइयाँ कौन कौन सी उत्तम मिलती हैं ? देखो भाई, डेढ़ पाव पूड़ियाँ, आध पाव कलाकन्द, छटाँक भर रबड़ी, आधी छटाँक नुकती और बस तीन पाव दूध लेते आना। जब तक मैं सन्ध्या करता हूँ।

× × × ×

उपदेशकजी, यहाँ तो साढ़े तीन आने पैसे एक खुराक में खर्च करना अन्तरंग ने पास किया हुआ है। कलाक़न्द और रबड़ी अपने पास से मँगाइये या मन्त्रीजी के घर जाइये। आप कहें तो पूड़ियाँ तो मैं लाये देता हूँ।

× × × ×

अच्छा जी ! सिर्फ़ साढ़े तीन आने ? फिर कैसे काम चलेगा ? यहाँ सभासदों के घर आतिथ्य का नियम नहीं है। कैसी बुरी बात है ! यह तो बड़ा अनुचित है। ख़ैर, दूध जरूर लाना।

× × × ×

आप तो, महाशयजी ! तंग बहुत करते हैं। मैं कहता हूँ साढ़े तीन आने से धेला भी ज्यादा मंजूर नहीं। देखिये, पास ही एक रोटी की दूकान है, वहाँ चले जाइये और यह लीजिये साढ़े तीन आने पैसे ? बस, अब मैं जाता हूँ।

× × × ×

अरे भाई, सुनो तो—सुनो तो, यह क्या करते हो, इतने से कैसे काम चलेगा ? सुनो-सुनो। अरे ओ भाई ! ओ महाशय, सुनो ! अरे ओ महाशय ! भाई ! ओ—

× × × ×

नमस्ते, मन्त्रीजी ! उफ़ ! आज तो बड़ी गरमी रही, घोर ऊष्मा पड़ती है। स्वाध्याय भी ठीक-ठीक नहीं होता। कहिए, आपके चिरंजीव किस पाठशाला में पढ़ते हैं।

× × × ×

हाँ-हाँ, उपदेशक जी ! कहिए-कहिए मतलब की बात कहिए, मुझे अवकाश बहुत थोड़ा है। आप चपरासी से कह देना, कल नोटिस निकाल देगा, आपका व्याख्यान हो जायगा।

× × × +

मन्त्रीजी, सभा के लिए सहायता ? आप जानते ही हैं, आज-कल वेदप्रचार की आर्थिक अवस्था बहुत ख़राब है।

× × × ×

चन्दा-वन्दा इस वक़् कुछ नहीं हो सकता, शहर की दशा बहुत ख़राब है। अच्छा ! नमस्ते। मुझे और कितने ही कार्य करने हैं। आपके भोजन का प्रबन्ध तो हो गया न ?

जी हाँ, हो तो गया, मगर............

× × × ×

अच्छी बात है, अब आराम कीजिए, सम्भव हुआ तो कल शाम को व्याख्यान में मिलूँगा। नमस्ते।

× × × ×

महाशयो, ब्रह्मचर्य बड़ी उत्तम वस्तु है, इसे जो धारण नहीं करते, बुरा करते हैं। देखिये, इसके गुण मेरी बनाई इस 'ब्रह्मचर्य-महिमा' में भली-भाँति वर्णित हैं। मूल्य केवल पाँच आने है।

× × × ×

तो, सज्जनो, मैं आपको ब्रह्मचर्य की महिमा बता रहा था। ब्रह्मचर्य के अभाव में शरीर अशक्त और निर्बल हो जाता है, और कार्य करने की सामर्थ्य नहीं रहती। बलवान् बनने के उपाय मेरी इस 'शक्तिसुधा' नामक पोथी में आपको मिलेंगे। मूल्य केवल सात आने। यह तो सैकड़ों की तादाद में ख़रीद कर मुफ़्त बाँटने लायक़ है।

× × × ×

हाँ, तो भद्रपुरुषो, निर्बलता से बढ़ कर संसार में कोई पाप नहीं है, निर्बलता सारे अनर्थों की जननी है। निर्बलों का न लोक सधता है न परलोक। स्वराज्य तो मिलता ही नहीं। स्वराज्य-प्राप्ति के उपाय मेरी 'आज़ादी' नामक पुस्तक में बड़ी सुन्दरता

पूर्वक समझाये गये हैं। मूल्य केवल नौ आने। यह भारतवासी मात्र के लिए उपयोगी है।

× × × ×

अच्छा, तो कहने का अभिप्राय यह है कि लोग ब्रह्मचर्य व्रत धारण करें और अपने शरीरों को बलिष्ठ बनावें। इसी में देश का उपकार है, और यही धर्म का सार है। अपनी कुछ किताबें मैं साथ लेता आया हूँ। एक साथ सैट खरीदने पर २५ फ़ीसदी कमीशन भी मिलता है।

× × × ×

बस, बिना ब्रह्मचर्य के सब व्यर्थ है, अन्त में मुझे आपसे यही कहना है कि ब्रह्मचर्य धारण करो, ब्रह्मचर्य-सम्बन्धी साहित्य पढ़ो। जिल्द बँधी हुई भी किताब मेरे ट्रंक में पड़ी हैं। निःसन्देह ब्रह्मचर्य की जगत में सार वस्तु है। अब मैं अपना व्याख्यान समाप्त करता हूँ। आशा है, आप पुस्तकों की एक आध प्रति लेकर जायँगे।

बेढव वैद्य

उफ़ ! बड़ी बेरोज़गारी है, लोग मारे-मारे फिरते हैं। भूखों मर रहे हैं, ऐसी मुसीबत परमात्मा किसी पर न डाले। भला कुछ इस निकम्मेपन का भी ठिकाना है।

× × × ×

अरे साहब, हम कौन की कहें, सारे प्रयत्न कर लिये, तमाम कोशिशें करलीं, पर किसी में कुछ भी कामयाबी न हुई, घर में हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं। करें भी तो क्या करें और जायँ भी तो कहाँ जायँ।

× × × ×

हाँ हाँ, ठीक कहते हो, भाई ! तुम्हें भी हम बराबर बेरोज़गार देख रहे हैं। मैं समझता हूँ, जब से मिडिल फ़ेल होकर तुमने मदरसा छोड़ा तब से कोई रोज़गार नहीं मिला।

× × × ×

रोज़गार कैसा, दोस्त ! किसी ने बात भी नहीं पूछी। जहाँ गया वहीं 'सनद' तलब की गयी !!! मगर 'सनद' कम्बख़्त मेरे पास कहाँ ? 'सनद' !!!--हाय ! 'सनद' ही होती तो 'फ़िद्वी' मारा-मारा क्यों फिरता ? इस बुरी हालत में क्यों मुबतिला होता।

× × × ×

अरे भाई, 'सनद' में भी क्या रक्खा है ! यह देखो, मिडिल का सार्टीफ़िकट ! और चौथी दफ़ा की सनद !! आज तक कहीं जगह नहीं मिली, किसी ने बात तक करना पसन्द नहीं किया, अब बोलो 'सनद' को ले कर शहद के साथ चाटें या उसे ओढ़ें।

× × × ×

यह तो सब ठीक, मित्र ! पर पेट के लिये भी तो कुछ करना चाहिये, इस नारकीय जीवन से तो मौत ही अच्छी है। न तन को वस्त्र हैं, न पेट को टुकड़े ! धिक्कार है ऐसी जिन्दगी को और लानत है इस पढ़ाई पर ! हाय ! हमारी यह हालत ! यह………

× × × ×

अरे, यार, तुम बड़ी कच्ची गोली के मालूम पड़ते हो, इतने घबरा गये ! ऐसे झींकने लगे !! आओ, बैठो, कुछ विचार करें और इस दारिद्र-दानव को दूर करने के उपाय सोचें।

× × × ×

देखो, तुम तो घबराते हो, पर हमारी समझ में एक बात आती है। आज कल सब से सरल उपाय वैद्य बनना है। कहीं से 'आयुर्वेद-विशारद' या 'वैद्य-कुल-कमल-दिवाकर' की उपाधि खरीद लें और इलाज करना शुरू कर दें। धन की ढेरी लग जायगी ! सुयश का स्तूप खड़ा हो जायगा !! प्रतिष्ठा के पजावे दिखाई देने लगेंगे !!! क्यों है न ठीक ?

× × × ×

भाई, बात तो ठीक है, परन्तु हम लोग तो वैद्यक में कुछ जानते ही नहीं चिकित्सा की एक पोथी भी नहीं पढ़ी। दवा कहाँ है ? फिर कैसे हकीम !

× × × ×

वाह ! पोथी पढ़ते तो फिर हकीम ही क्यों बनते ? हिकमत भी कोई ऐसी चीज़ है, जिसके लिये 'वर्नाक्यूलर फ़ाइनल परीक्षा' की तरह सिर तोड़ कर कोशिश की जाय। 'अमृतसागर' या 'इलाज-उल-गुरबा' पढ़ लिया और बस !

× × × ×

बस ! इतने ही में ?–दो ही किताबें काफ़ी होंगी ? दो पुस्तकें पढ़कर ही वैद्य बन जावेंगे ? यह तो बड़ा सस्ता सौदा है ! अच्छा, फिर दवाएँ कहाँ से आएँगीं ?

× × × ×

हो यार, तुम भी निरे बजरबट्टू ! जभी तो तुम्हें बराबर तीन साल फ़ेल होने पर भी 'वर्नाक्यूलर फ़ाइनल परीक्षा' की सनद नहीं मिली। अरे, दो नहीं एक किताब ही काफ़ी है। सो भी पढते जाओ और इलाज करते जाओ।

× × × ×

रही दवाएँ सो क्या उनके लिए चार-छै आने खर्च नहीं कर सकते ? जहाँ दस आने 'अमृतसागर' ख़रीदने में व्यय किए जायँगे वहाँ धेली·बारह आने का काठ कबाड़ भी सही।

× × × ×

हाँ, एक काम अवश्य करेंगे। दवाओं में सड़ी से सड़ी और गली से गली चीज़ें डालेंगे। पंसारियों के यहाँ कूड़ा-करकट बहुत पड़ा रहता है। वहीं से सस्तमोला ख़रीद लिया और काम चलाया। क्यों ? है न ठीक ! अच्छी दवाएँ तो मँहगी मिलेंगी इसलिए मारो उन्हें गोली।

× × × ×

हाँ है तो दोस्त ठीक, इस काम को कल से ही शुरू करदो। इस से सस्ता सौदा दूसरा न मिलेगा। वाह ! वाह !! तुमने खूब बात सोची !--मगर यह तो बताओ, रोगियों को फ़ायदा न हुआ तब ?

× × × ×

तब क्या ? उसके घर वाले रोवेंगे और आँसुओं से पग धोवेंगे। अपनी फ़ीस और दवा के दाम में तो कोई सन्देह ही

नहीं। 'फ़ीस' भी न सही तो औषध की क़ीमत तो हाथ में आही जायगी। और क्या चाहिए।

× × × ×

भाई भोलेश्वर! तुम समझे नहीं, यह कार्य तो अपने लाभ के लिए किया जायगा, न कि मरीज़ों के फ़ायदे को। कोई मरे या जीवे हमें अपने टकों से काम! मरेगा उसके घरके रोवेंगे, अच्छा हो जायगा हमारे गुण गावेगा। 'अर्थी दोषम् न पश्यति' इस नीति-वचन को सदैव दृष्टि-पथ में रक्खो। समझे।

× × × ×

'अच्छा, लागत से दवा के दाम दूने रखने चाहियें।'—'तो बस करली वैद्यक और बन गये मालामाल? बेवकूफ़! दूनी कि दसगुनी! तुम्हें मालूम नहीं है, दवा की जितनी क़ीमत ज्यादा होती है, उसकी उतनी ही वक़अत बढ़ती है।'

× × × ×

भाई, इतने ज्यादा दाम रक्खे गये तो, ग़रीब क्या पत्थरों से सिर टकरावेंगे, वे किसके घर जायँगे और कैसे इलाज करायँगे? इस पर भी तो विचार करलो।

× × × ×

भाई, कह तो दिया उनसे कुछ कम ले लेना, 'जैसा मुँह वैसा तमाचा'। मतलब यह है कि, किसी को अपने पंजे से निकलने न देंगे। जिस तरह मुमकिन हो फाँस लो, फन्दे में से, चिड़िया को फड़फड़ाने पर भी, न निकलने दो।

× × × ×

है तो बात सलाह की। मगर हर एक रोग की अलग-अलग दवायें रखनी पड़ेंगी, तब कहीं कामयाबी होगी। शुरू में झंझट जरूर है, और ख़र्च भी काफ़ी है।

× × × ×

वही बेवकूफी की बातें! अरे कौन पूछता है? दो चार दवायें बना कर रखलो, बस अदलते-बदलते उन्हें ही हर मरीज़ को देते रहना। न मालूम तुमने वैद्यक को क्या 'हौआ' समझ रखा है? जब हमने कह दिया कि वह सबसे सरल काम है, फिर काहे का सोच-विचार।

'मरे को मर जाने दो। घी की चुपड़ी खाने दो॥'

× × × ×

अच्छी बात है, दो उपाधियाँ तुम खरीदो और दो मेरे लिये मगादो। यह लो तीन रुपये तेरह आने। क्या, इतने में वैद्य-विशारद' और 'आयुर्वेद-पुंगव' की उपाधियाँ आजायँगी न?

× × × ×

हाँ! हाँ, अवश्य! इसमें तो मनीआर्डर खर्च और वी० पी० का महसूल भी शामिल है। मैं भी दो डिगरियाँ मँगा लूँगा। पुस्तक किसी से मँगैनू माँग लायँगे उसके लिए अभी से दाम डालने की क्या जरूरत है।

× × × ×

नहीं, भाई! ऐसी भी क्या कृपणता, दस-बारह आने की तो बात ही है। अपनी पुस्तक ही खरीद लो, न जाने मँगनई वाला पुस्तक कब माँग बैठे।

× × × ×

'ही-ही-ही' तुम बड़े सीधे-साधे बौड़म वैद्य बनोगे। अरे, आई हुई चीज़ भी कभी वापिस की जाती है? माँगता रहो, हज़ार बार, माँगता रहो। पर देगा कौन?—शास्त्र में स्पष्ट आज्ञा है—"लेखनी पुस्तिका नारी परहस्ते गता गता।" बस पुस्तक गई सो गई। फिर किसका देना, किसका लेना? बोलो अक़्ल में।

× × × ×

भाई, वाह! यह भी तुमने अच्छी विधि बताई! खूब दाम बचाये और शास्त्र का प्रमाण भी दे दिया; तुम बड़े बुद्धिमान् विद्वान् हो। अगर यही बात न होती, तो सच है, 'वरनाक्यूलर फ़ायनल परीक्षा' के थर्ड डिवीज़न में पास तुम्हें कौन कर देता? 'सनद' करा रही है। वह है ही ऐसी चीज़! वह मिलती ही तुम जैसे बुद्धिमानों को है।

× × × ×

अच्छा, कल नरक नवमी है, कल से वैद्यक का काम प्रारम्भ होगा। सब विधि समझ में आगई न? देखो, बौड़मपन में आकर भूल न जाना। बस, ऐसा काम करो, न मरज़ रहे न मरीज़। रहे तो हमारी दवा की क़ीमत और जाने आने की फीस। लो, अब जाते हैं और किसी मूँजी मरीज़ की तलाश करेंगे।

हास्यरस के सर्व श्रेष्ठ लेखक

की

दूसरी अमर-रचना

पिंजरा पोल

जिन लोगों ने चिड़ियाघर पढ़ा है उनसे पिंजरापोल की प्रशंसा करना व्यर्थ है। यह तो चिड़ियाघर से भी आगे बढ़ गया है। इसके विचित्र जन्तुओं को देख कर पाठकों की तबियत न फड़क उठे और मुँह से वाह-वाह न निकले तो हम जिम्मेदार। इसमें आपको चलती-फिरती पुस्तकों की समालोचना मिलेगी, नए और पुराने कवियों का हास्यमय अनुकरण मिलेगा और मिलेगा वह मसाला जिसे सुना कर आप रोते को भी हँसा सकेंगे। मूल्य १॥।

आज ही मंगवा लीजिये वरना दूसरे संस्करण की बाट जोहनी होगी।

पता—

साहित्य-रत्न-भण्डार,

आगरा।